व. ५०

ॐ शिवः ।

वेदान्त-सिद्धान्त

द्वितीय खण्ड

रचयिता-

गोरखपुर निवासी श्रीयुत पण्डित
शिवकुमारजी शास्त्री
सम्पादक ज्ञानशक्ति ।

श्रीयुत बाबू सरयू प्रसादसिंह,
क्लर्क रेलवे लाइम डिपार्टमेण्ट स्टेशन गोरखपुर
द्वारा प्रकाशित ।

बी॰ एल॰ पावगी द्वारा हितचिन्तक प्रेस,
रामघाट, बनारस सिटी में मुद्रित ।

पहलीवार १०००] [मूल्य ॥)

ॐ शिवः ।

समर्पणपत्र ।

मैं इस पुस्तक को, वेदान्त के अत्यन्त प्रेमी, स्थानीय वेदान्त-सिद्धान्त प्रचारिणी सभा के सभापति, संस्कृत के विद्वान, परमधार्मिक, हिन्दी के अत्यन्त प्रेमी, देश के अनन्य सेवक, गोरखपुर नागरीप्रचारिणी सभा के सभापति और वेदान्त-वागीश श्रीमान बाबू भगवतप्रसादजी वकील को सादर, सहर्ष समर्पण करता हूं ।

आशा है कि, वे इस हमारे तुच्छ भेंट को अवश्य स्वीकार करेंगे ।

भा० शुक्ल १४ शी । }
१९७२ }

आपका शुभचिन्तक
शिवकुमार ।

श्रीमान् बाबू भैरवप्रसादजी वकील
सभापति वै० सि० प्र० सभा ।

ग्रन्थकर्ता—

गोरखपुर निवासी, पं० शिवकुमार जी शास्त्री ।

ॐ शिवः ।
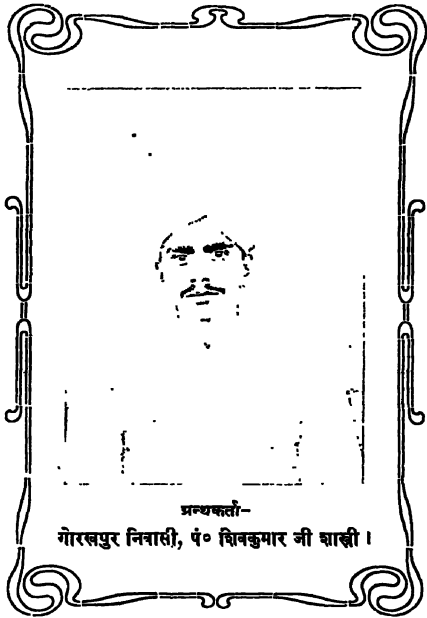
वेदान्तसिद्धान्त

द्वितीय खण्ड ।

श्लोक ।

ॐ यस्माज्जातं जगत्सर्वं यस्मिन्नेव विलीयते ।
येनेदं धार्य्यते चैव तस्मै ज्ञानात्मने नमः ॥

सत्यज्ञान की आवश्यकता ।

इस वेदान्तसिद्धान्त का द्वितीय खण्ड आरम्भ करने के प्रथम मैं यह कह देना आवश्यक समझता हूं, कि बहुत से लोग ऐसे भी हैं, जो कहते हैं कि, संसार को असत्य मानने से वेदान्ती लोग आलसी होजाते हैं। वे सब वस्तुओं को असत्य जानकर किसी के लिये कुछ प्रयत्न नहीं करते। इसलिये वर्त्तमान समय के अनुसार नवयुवकों में इसका प्रचार करना अयोग्य है। इस-के प्रचार से लाभ के बदले हानि होगी। परन्तु विचारने की बात है, कि सिद्धान्त दो प्रकार का हो सकता है। एक यह कि, "ऐसा वचन बोलें वा ऐसा लेख लिखें कि जिसमें हमारा लाभ हो"। दूसरा सिद्धान्त यह है कि, "चाहे लाभ हो वा हानि सर्वदा सत्य

बोलेंगे और सत्य लिखेंगे" । इन दोनों में से प्रथम सिद्धान्त वाले मनुष्य असत्य भी बोला करते हैं । क्योंकि उनका सिद्धान्त यह नहीं है कि सत्य बोलें किन्तु वे तो यह मानते हैं कि वही बात बोलेंगे जिसमें हमारा लाभ हो ; चाहे वह सत्य हो वा असत्य । अतएव वे जिस प्रकार से हो सकेगा चाहे वह धर्म है वा अधर्म, चाहे वह सत्य है वा असत्य, चाहे वह पुण्य है वा पाप : यदि उसमें लाभ है तो वैसी बात अवश्य बोलेंगे, वैसा लेख अवश्य लिखेंगे । परन्तु जो सत्य बोलना चाहते हैं । जो सत्य के भूखे हैं । जो संसार में एक बार इस बात को प्रगट कर देना चाहते हैं, कि " सत्य क्या है ? " जिसका सिद्धान्त यह है कि सत्य मत का प्रचार हो; जिसका सिद्धान्त यह है कि हम लोग सत्य-पथ के पथिक बनें, वहां के लिये यह प्रश्न नहीं है । वहां के लिये यह नियम नहीं है, कि इससे हानि होगी इसलिये हम ऐसी बात न बोलें । प्रायः सत्यवादी के समक्ष ऐसी २ हानियां उपस्थित हुआ करती हैं । परन्तु, क्या सत्यवीर, धर्मवीर और सत्यवादी पुरुषसिंह हानिरूपी मत्त हस्ती को देखकर मुख मोड़ता है ? कभी नहीं । जीवनहानि से बढ़कर दूसरी हानि संसार में कौनसी है ? क्या आप उन पुरुषों को आज तक नहीं सुनें हैं, जो सत्य के लिये अपने जीवन को अर्पण कर दिये हैं, जो सत्य के लिये अपने गर्दन को तलवार पर रख दिये हैं ? अवश्य सुनें होंगे । तब क्या वर्त्तमान और भविष्यत् के सत्यवीर

अपने सामने हानियों को देखकर अपने सत्यपथ को छोड़ सकते हैं ? कदापि नहीं। फिर, हम इस भय से कि हमारे देशवासी इस-के प्रचार से आलसी, निरुद्योगी और पुरुषार्थहीन हो जायँगे तथा इससे हमारा देश दरिद्र हो जायगा इस सत्य सिद्धान्त को छोड़ दें ? यह कैसे हो सकता है।

यह उपदेश उनके लिये नहीं है जो सुख, धन और ऐश्वर्य्य के भूखे हैं ; चाहे इससे सुख, धन और ऐश्वर्य्य भले ही हो। किन्तु यह उनके लिये है जो सत्य के भूखे और ज्ञान के प्यासे हैं। यह उनका और वहां का, उत्तर है। जहां का और जिसका यह प्रश्न है, कि " सत्य क्या है " ?

हां, यदि आप इस सिद्धान्त को युक्तियों व प्रमाणों से असत्य सिद्ध कर सकते हैं ; तो यह उचित होगा कि इसका प्रचार और इसका उपदेश रोक दिया जाय। लेकिन ऐसा होना अर्थात इसको असत्य सिद्ध करना दुस्साध्य ही नहीं किन्तु अस-म्भव है। अतः इसको सत्य मानकर, इसको यह मानते हुवे भी कि यह यथार्थ है ; केवल इस कारण से कि " इससें देश की हानि होगी " इसका प्रचार नहीं रुक सकता। क्योंकि जो सत्य के जिज्ञासु हैं। जो सत्यपथ को पूँछ रहे हैं। उन लोगों के लिये सत्यज्ञान छिपाया नहीं जा सकता। उन लोगों को सत्यपथ न बतलाना अन्याय और पाप है। जैसे लाभ के भूँखे को लाभ का उपाय बतलाना और सुख के भूँखे को सुख का उपाय बतलाना

* सत्यज्ञान से देशोपकार *

अब रही यह बात कि यदि इस सत्यज्ञान के साथ देश का लाभ भी प्रत्यक्ष सिद्ध होजाय; तो आपको सोने में सुगन्ध मानना पड़ेगा। उस समय कभी आप इसके विमुख नहीं हो सकते। वास्तविक भलाई तो सत्य ही से होती है; चाहे वह पहले पहल देखने में कड़ुवा भी मालूम हो। परन्तु उसका परिणाम भला होता है। जैसे लड़के पहले पढ़ने के समय अपनी हानि समझते हैं। परन्तु पढ़ने का परिणाम अच्छा होता है। उसी प्रकार सत्यज्ञान से पहले चाहे हानि दीख पड़े परन्तु अन्त में इससे लाभ ही है। आप ही विचारिये कि यदि देश का लाभ देश का उपकार सत्यज्ञान से नहीं होगा तो क्या असत्य ज्ञान से होगा। उपरोक्त लेख का तात्पर्य्य यह नहीं है कि इस ब्रह्मज्ञान से वा इस सिद्धान्त से देश का लाभ नहीं है। या हम देश का लाभ नहीं चाहते। किन्तु उपरोक्त लेख पहले इसलिये लिखदिया है कि देशोपकार का वर्णन होनेपर कोई यह न जान ले कि यह सिद्धान्त देशोपकार के लिये, तोड़ मरोड़ कर लिखा गया है। बल्कि आपको यह मालूम रहे कि यह सत्य

के प्रचार के लिये लिखा गया है । परन्तु इस ज्ञान में देशोपकार का गुण है । फिर कहते हैं कि यह गुण कैसा है ? मानो सोने में सुगन्ध । परन्तु याद रहे कि सोने का मूल्य इसलिये नहीं अधिक है कि वह सुगन्धित है, किन्तु इसलिये अधिक है कि वह सोना है । उसी प्रकार इस ज्ञान का मूल्य इसलिये नहीं अधिक है कि इससे देश का लाभ है, किन्तु इसलिये अधिक है कि यह सत्य है ।

यह सत्य पथ एक ऐसा पथ है जिसके पथिक को आज तक हानियां दृष्टिगोचर तक नहीं हुई । यह वह पथ है जिसका पथिक आज तक थका हुवा उदास और निरुद्योगी नहीं देखा गया । यह वह पथ है जिसका पथिक आज तक चोरों द्वारा नहीं लुटा गया यह वह पथ है जिसपर कायर लोग भी आकर बहादुर होगये और आज तक किसी के आधीन में नहीं हुवे । इस सत्यज्ञान का ज्ञानी उस विष्णु के समान है जिसके अर्दली में जय और विजय सेवा करने के लिये हर वक्त तैयार रहते, और लक्ष्मी देवी पैर दाबती हैं । इतना ही नहीं सत्यज्ञान का ज्ञानी, मनुष्य नहीं-किन्तु वह ईश्वर है जिसके सामने प्रकृति देवी चारो पदार्थ रक्खे हाथ जोड़ सिर झुकाये आज्ञा पालन करने के लिये खड़ी रहती है । ऐ सत्यवीरो और ऐ देशभक्तो ! आप लोग ज़रा इस सत्यज्ञान को धारण कर आंख खोलें । जिस समय आप अपने सत्यस्वरूप में जागेंगे । जिस समय आप अपने

पुरुषार्थ को धारण कर खड़े होंगे देखेंगे कि सामने प्रकृति देवी अपने पुत्ररूपी सारे नियमों के साथ हाथ जोड़े ऐश्वर्य्य और स्वतन्त्रता सौंप रही है। इसलिये हे हमारे प्रिय देशभक्तो ! हताश मत हो। इस ज्ञान से देश की हानि नहीं होगी किन्तु देश का कल्याण होगा और देशवासियां का मंगल होगा।

हे ईश्वररूपधारी सज्जनगण ! आप ही लोग विचारिये कि श्रीरामचन्द्रजी ऐसे वेदान्ती जिनको वसिष्ठजी ने योगवासिष्ठ ऐसे वेदान्त का उपदेश दिया। जिसके पद २ में, श्लोक २ में और अध्याय २ में संसार को असत्य सिद्ध किया गया है, क्या वे आलसी थे ? क्या वे अकेले संसार को चकित नहीं कर दिये थे। क्या वे अकेले जंगलों में रहते हुवे हज़ारों राक्षसी बलिष्ठ सेनावों को नहीं जीता था ? यदि जीता था तो क्यों ? क्या आप इसका कारण जानते हैं ? इसका कारण यह था कि उनको वेदान्त-सिद्धान्त का ज्ञान था। वह यह जानते थे कि हम साक्षात ब्रह्म हैं। ईश्वर हैं। राम हैं। फिर भी आप कहते हैं कि वेदान्ती आलसी होते हैं। क्या श्रीकृष्ण ऐसा वीर वेदान्ती नहीं था ? जिसने गीता ऐसे वेदान्तशास्त्र का उपदेश दिया है। यदि था; तो क्या वह आलसी था ? क्या उस भगवान के वचनों को सुनकर अर्जुन ने महाभारत में वीरता नहीं दिखाई थी ? क्या अर्जुन कभी ज्ञान का उपदेश पाकर आलसी और पुरुषार्थ-हीन हुवा था ? कभी नहीं। कभी नहीं॥ हां, बहुत से लोग यह

कहेंगे कि गीता में संसार को असत्य नहीं कहा है । परन्तु प्रथम खंड में हम इसे सप्रमाण सिद्ध कर चुके हैं कि गीता में भी संसार को असत्य सिद्ध किया है ।

वहां पर आप देख सकते हैं ।

और भी देखिये ! दशरथ, रघु, मनु, जनक, रावण, परशुराम और हनुमानजी तथा अनेक ऋषि मुनि ये लोग क्या आलसी थे ? कौन कह सकता है, खैर यह तो पुरानी बात है । इसको शायद कुछ लोग न मानें और कुछ शंकायें उपस्थित करें; तो उनसे हम पूंछते हैं कि वर्त्तमान समय के स्वामी विवेकानन्द बी० ए० तथा स्वामी रामतीर्थजी एम० ए० जो वेदान्त के पूरे पक्षपाती थे, और संसार को सदा असत्य मानते थे । क्या वे आलसी थे ? क्या उनसे कुछ भी देश का उपकार नहीं हुवा ? क्या इन लोगों ने अपने असंख्य श्रोतावों के हृदय में नया जीवन नहीं डाल दिया ? कौन कह सकता है । ये वे महात्मा थे जिनके असीम पुरुषार्थ से जिनके अद्भुत आत्मबल से, जिनके प्रभावशाली व्याख्यान से, अमरीका में भी वेदान्त का झंडा फहरा रहा है । जिसके सामने हजारों अमरीकन सिर झुकाने के लिये तैय्यार हैं। इन्हीं महात्मावों के प्रभाव को देखकर अमरीका भी जान गया कि हिन्दुस्तान निरे निकम्मे और आलसियों से नहीं भरा है । किन्तु भारत एक ऐसी भूमि है जो फिलासफरों की माता और ब्रह्मज्ञानियों की जननी है ।

स्वामी रामतीर्थ ने केवल व्याख्यान ही नहीं दिया किन्तु अपने अद्भुत कर्मो से भी अमरीका निवासियों को चकित किया। बहुत से हमारे पाठक इस समय सोचते होंगे, कि क्या ऐसा पुरुषार्थी, वेदान्तवीर और भारतकेसरी संसार को असत्य मानता था ? हां निस्सन्देह । उनके व्याख्यानों को पढ़िये । आपको मालूम होगा कि वह वीर संसार को असार मानता था। उनका लेकचर जो ८ फरवरी सन् १९१३ ईस्वी को हुआ था, उसमें उन्होंने इसप्रकार कहा है:——

Rise above this, so that the reality becomes real, and all differences disappear; this is what Vedant calls Ekatwam. God is reality; the world or phenomena is Illusion.

Thus realize your own true self, realize the Atman to such a degree that this world may become unreal and that God or the true Devinity within may become real.

इस प्रकार वे संसार को असत्य मानकर भी अपने कर्तव्य कर्म में दृढ़ थे । वे इस संसाररूपी जंगल में सिंह के समान निर्भय हो पर्य्यटन करते हुवे अपने व्याख्यानरूपी गर्जना में इस प्रकार कहा था:—

डटकर खड़ा हूँ खौफ से खाली जहान में।

तसकीने दिल भरी है मेरे दिल में जान में ॥
बादशाहे दुनियां के हैं मेरे मुहर शतरंज के ।
दिल्लगी के चाल हैं हर सुलह वो जंग के ॥
खुद खुदा हूँ शाह हूँ जंगल में आधी रात है ।
सो रहा हूँ मस्त होकर लात ऊपर लात है ॥

अब देखिये कि स्वामी शंकराचार्य्य । जो इस भारतवर्ष में एक प्रसिद्ध वेदान्ती हो गये हैं । कैसे पुरुषार्थी और कर्मवीर थे । क्या उनके पास कभी आलस आने पाई थी ? क्या कोई किसी देश के इतिहास से किसी ऐसे एक मनुष्य को भी बतला सकता है जो शंकाराचार्य्य के समान इतनी थोड़ी उमर में इतना बड़ा काम किये हो ? कभी नहीं । जिस समय सारा हिन्दुस्तान बौद्धमत का अनुयायी हो वेद को तिलाञ्जलि दे चुका था । जिस समय यहां के राजे, महाराजे तथा सम्राट बौद्ध मत क प्रचार में लगे थे । उसी समय एक बालक सन्यासी तमाम भारतवर्ष में घूम कर, रासकुमारी से लेकर हिमालय तक तथा जगन्नाथजी से लेकर द्वारिका तक स्थान, स्थान में तथा नगर नगर में बेदान्त के पताके को गाड़ दिया । क्या एक बालक वा नवयुवक के लिये यह साधारण कार्य्य था ? बिचारने की बात है कि इस समय सैकड़ों पादरी आज कितने वर्षों से अपने मत के प्रचार में सर पीट रहे हैं । परन्तु कितने लोग ईसाई हुवे । आप स्वयं जानते हैं । सैकड़ा जबरदस्त मुसलमान आजन्म मरण

पर्यन्त इसी प्रयत्न में रहे कि सारा भारतवर्ष मुसल्मान हो जाय, परन्तु कितने मुसल्मान हुवे ? क्या यह किसी से छिपा है ? इस समय सैकड़ों आर्य्यसमाज के उपदेशक इस भारतवर्ष में जगह २ घूम रहे हैं ; परन्तु कितनी सफलता प्राप्त की ? क्या आपको नहीं मालूम है ? लेकिन वह पुरुष कैसा रहा होगा जो अकेला केवल २७ वर्ष की उमर में सारे भारतवर्ष के बौद्धमतियों को, सारे भारतवर्ष के राजे महाराजों को अपना अनुयायी और वेदमतावलम्बी बना लिया । इतना ही नहीं कि उन्होंने जगह २ पर व्याख्यान दिया, शास्त्रार्थ किया ; किन्तु इतनी ही उमर में कितनेक पुस्तकों और भाष्यों को लिख डाला । जो संस्कृत संसार में सूर्य्यवत प्रकाशित है । यह किसका जोर था ? यह किसका बल था ? हम कहते हैं वेदान्त का ब्रह्मज्ञान का ॥

इति द्वितीयोऽध्यायः ।

आलस्य की उत्पत्ति ।

आलस्य तमोगुण से उत्पन्न होता है । संसार में सबसे भारी पाप आलस्य है । इससे बढ़कर दूसरे पाप कम देखे गये । " तमोगुण " यह दो शब्दों से बना है । एक " तम " दूसरा " गुण " । "तमः" कहते हैं अन्धकार को । अन्धकार का गुण जिसमें हो उसे तमो-गुण कहते हैं । तमोगुण से आलस्य, निद्रा,

चित्त की मलिनता, निर्बलता, चिन्ता, शीतलता, कायरता, दरिद्रता, शोक और मोह उत्पन्न होता है। ज्ञान को ढकंदना, उन्नति का रोकना, वस्तुवों को नीचे गिराना और सबको भयभीत करना यह अन्धकारमय तमोगुण का कार्य्य है॥

देखिये! अब भी जहां पर अन्धकार होता है वहां सब लोग कुछ न कछ भयभीत होते हैं। परन्तु प्रकाश में किसी को भय नहीं होता। आप प्रत्यक्ष देखते हैं कि जहां पर अन्धकार होता है वहां पर कोई पौदा नहीं उगता। न कोई पौदा ऊपर बढ़ सकता है। इससे यह सिद्ध होता है कि अन्धकारमय तमोगुण सबकी उन्नति को रोकता है। अन्धकार ही अर्थात तमोगुण हि निद्रा को भी उत्पन्न करता है। यही कारण है कि रात्रि को अन्धकार में निद्रा विशेष करके लगती है। और लोग इस समय विशेष करके सोते हैं। अन्धकार में शीतलता और कायरता विशेष करके होती है। इसीसे वहां की वस्तुयें सड़ जाती हैं। वहां के मनुष्य निद्रालु, आलसी और रोगी होकर दुबले और पीले हो जाते हैं। अन्धकार होने से वहां के वस्तुओं का भी ज्ञान नहीं होता, क्योंकि तमोगुण ज्ञान का भी ढकनेवाला होता है। अन्धकार में जो उन्नति का प्रयत्न करता वह भी ठोकर खाकर गिर पड़ता है। अतएव उन्नाति के लिये सतोगुण से उत्पन्न ब्रह्मज्ञानरूपी प्रकाश कीं आवश्यकता है। विना इस प्रकाश के संसार में कोई काम नहीं चल सकता। चित्त की

मालिनता, चिन्ता, शोक और मोह भी अन्धकार ही में होता है। इससे यह सिद्ध है कि ब्रह्मज्ञानरूपी सूर्य्य के उदय होने पर तमोगुणरूपी अन्धकार का स्वतः नाश हो जाता है। इसके नाश होजाने से आलस्य निद्रा और कायरता देवी बिना कहे वहां से प्रस्थान कर जाती हैं। ब्रह्मज्ञान एक विद्या है। विद्या ही प्रकाश है, और यही उन्नति का कारण है। देखिये! आजकल्ह जो २ देश और जो २ जातियां उन्नति के शिखर पर पहुँची हैं। वहां पर विद्या का प्रकाश है, विद्या का बल है। स्त्री पुरुष सब पढ़े लिखे हैं। अज्ञानान्धकार का एकदम वहां पर पता नहीं है यही कारण है कि वहां के लोग आलस्यहीन, उद्योगी, पुरुषार्थी निर्भय, शूर वो वीर हैं। उनको वेदान्त का ज्ञान नहीं है परन्तु उनका कर्म वेदान्त के मतानुसार; अर्थात् वहां पर अमली वेदान्त, व्यवहारिक वेदान्त का प्रचार है। वे इञ्जील के मतानुसार नहीं चलते। उनका व्यवहार बाइबिल के अनुसार नहीं है। उसे वे केवल गिरजाघर के लिये रक्खे रहते हैं। वे जो व्यवहार करते थे उसे यह नहीं जानते थे कि यह वेदान्त के अनुसार है। यही कारण कि जब उन्होंने वेदान्त संम्बन्धी व्याख्यानों को सुना इसके पुस्तकों को पढ़ा तो झट इसके अनुयायी होगये। आजकल्ह अमरीका में सहस्रशः वेदान्ती पाये जाते हैं। इसका क्या कारण उन्होंने देखा कि जिसके अनुसार हमलोग बिना जाने चलते थे, जिसके बिना हम लोगों का काम नहीं चल सकता, जिसके खोज में हमलोग

आज तक हैरान थे वह यही वेदान्त मत है । यही मत है जिसके सामने दुनियां के बड़े २ फिलासफर तत्ववेत्ता सिर झुकाने को तैय्यार हैं । यही मत है जिसका आधार अन्ध विश्वास नहीं किन्तु फिलसिफा, साइन्स, मन्तिक और तत्वज्ञान है ॥

अमरीका-निवासी वेदान्त के अनुसार ही चलते थे परन्तु यह नहीं जानते थे कि इसका नाम वेदान्त है । जिस समय उनके कानों में इसकी भनक पड़ी इसको सहर्ष स्वीकार कर शिरोधार्य्य किया । हमारे इस देश के अवनति का कारण अविद्यान्धकार तथा तमोगुण ही है । यदि यह तमोगुण यह अविद्यान्धकार इस देश में न होता तो आज इस जाति की यह दशा न होती । इस देश की स्त्रियां तो बिलकुल पढ़ती ही नहीं। पुरुष जो कुछ पढे हैं वे भी वेपढ़ के समान हैं । किसी प्रकार किसी दफ़तर में नौकरी करके १० दश पन्दरह रूपये में अपना जीवन निर्वाह करते हैं । ये राजनीति नहीं जानते, ये मजहब वा धर्म नहीं जानते, ये पदार्थविज्ञान साइन्स और उसका उपयोग कुछ नहीं जानत । फिर इनके लिये वेदान्त-फिलास्फी वा ब्रह्मज्ञान स्वप्न के समान है । यहां के कुछ लाग जो वदान्त पढ़े भी हैं वे भी पूर्ण विद्या न होने के कारण उसे पूर्णरूप से नहीं समझ सकते । उसे व्यवहार में नहीं ला सकते । उसपर अमल नहीं कर सकते । विद्या न होने के कारण इस वात का ज्ञान ही नहीं होता कि जो हम पढ़े हैं उसे अमल में भी लाना चाहिये।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य, येऽपिस्युः पापयोनयः ॥
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यांति परां गतिम् ॥ ३२ ॥

चौ०

जाति पांति पूछै नहिं कोई । हरिके भजे से हरिका होई ॥
सियाराममय सब जग जानी । करौं प्रणाम जोरि युग पानी

इसका मतलब यह है कि वेदान्त से जाति पांति का कुछ भेद नहीं। नीच से नीच मनुष्य भी जिसे आप लोग अपने मन माने नीच, म्लेच्छ और डोम मानते हैं तथा स्त्रियां शूद्र और वैश्य भी वेदान्त विद्या क अधिकारी हैं । यह सारा संसार सियाराममय तथा ब्रह्ममय है। इनमें कोई नीचा ऊँचा नहीं।

अब इन उपरोक्त श्लोकों, चौपाइयों को लोग पढ़ते हैं। परन्तु इसके अनुसार कुछ व्यवहार नहीं करते। अब भी कितने ऐसे हैं जो यह मानते हैं, कि डोमों, चमारों, शूद्रों और स्त्रियों को नहीं पढ़ाना चाहिये। इससे यह सिद्ध होता है कि हमारा देश अभी अमली वेदान्त तथा व्यवहारिक ब्रह्मज्ञान से बहुत दूर है। जिस समय जाति पांति का भेद मिट जायगा। और देश के सब लोग क्या स्त्री क्या पुरुष सब विद्या पढ़ेंगे, उस समय वे इस वेदान्त फिलासफी पर अमल कर सकेंगे। जिस समय सारा देश विद्वान हो जायगा। जिस समय ऊँच नीच सब बराबर होकर लिख पढ़ लेंगे। जिस समय हम लोग जानेंगे कि हम सब लोग एक हैं, सबका बराबर अधिकार है।

उस समय भारतवर्ष का उद्धार होगा। उस समय इस जाति की उन्नति होगी ॥

फिर भी जो लोग यह कहते हैं कि वेदान्त का नवयुवकों में प्रचार होने से वे आलसी हो जायंगे कितनी बड़ी भूल करते हैं। जिस ब्रह्मज्ञान से तमोगुण और अज्ञानान्धकार का नाश हो जाता है वह आलस्य का उत्पादक कैसे हो सकता है?

कोई वेदान्ती सेनापति जिस समय वीरता के साथ रण-क्षेत्र में लड़ रहा था उस समय किसी ने यह कहा था कि हे सेनापते! यदि सब संसार असत्य है; तो यह लड़ाई और ये तुमारे शत्रु भी असत्य हैं। फिर वृथा लड़कर कष्ट क्यों उठाते हो। घर क्यों नहीं फिर जाते। उस समय उसने यह उत्तर दिया था कि यदि सारा संसार असत्य है तो क्या घर फिर जाना असत्य नहीं? या जिस कष्ट को देख रहे हो वह असत्य नहीं? यदि दोनों असत्य हैं तो फिर हम अपना कर्त्तव्य कर्म क्यों छोड़ें॥

जैसे स्वप्न में राज्य भोगना वा कारागार भोगना दोनों असत्य हैं। परन्तु, जब तक स्वप्न में हैं, जब तक हम उस स्वप्न से कर्मवश अलग नहीं हो सकते। ऐसे समय में यदि हमको यह ज्ञान हो जाय कि यह स्वप्न है। और यह जान-जायँ कि जो हम देख रहे हैं वह असत्य और स्वप्न मात्र है; तो उस समय हम जो चाहें सो कर सकते हैं। जो चाहें सो भोग सकते

हैं । तो फिर राज्य ही क्यों न भोगें ? कारागार क्यों भोगें । क्योंकि असत्य कारागार से असत्य राज्य तो अच्छा ही है । कारण कि जबतक हम स्वप्न में हैं तब तक असत्य कारागार भी दुःखदायी होता है ॥

इसी प्रकार कर्त्तव्य, अकर्तव्य, धर्म और अधर्म ये सब वास्तव में तो अवश्य असत्य हैं । परन्तु असत्य अकर्त्तव्य से असत्य कर्त्तव्य अच्छा है । उसी प्रकार असत्य अधर्म से असत्य धर्म अत्यन्त उत्तम है । क्योंकि जबतक शरीर है तबतक उसपर धर्म अधर्म का प्रभाव भी अवश्य पड़ता है । अलबत्तः शरीर छूटने पर यह आत्मा धर्म अधर्म से छूटकर स्वतन्त्र तथा साक्षात परब्रह्म परमात्मा हो जाता है । यह विचार करने तथा ध्यान देने योग्य विषय है कि शरीर छूटने पर मनुष्य केवल मनोमय तथा विचारमात्र होता है, अर्थात् उस समय मनुष्य का ख्याल ही उसका स्वरूप होता है । जैसा जिसका विचार वा ख्याल होता है उस अवस्था को वह प्राप्त होता है । जैसे संसार में जो बिना इस ज्ञान के कि " हम सर्वशक्तिमान ब्रह्म हैं " मर जाता है । वह मरने पर भी अपने को नीच और पापी समझता है । सो वह उसी भावना के अनुसार पकड़ा जाता और दण्ड पाता है । उसकी नीची भावना ही उसका नीचा ख्याल ही उसको नीचा बनाकर दुःख के गड़हे में गिरादेता है । क्योंकि उस समय मनुष्य विचार मय, स्वसिद्धान्तस्वरूप और स्वज्ञानस्वरूप होता है ।

इसलिये जिस मनुष्य का यह सिद्धान्त होता है कि हम सर्व शक्तिमान ब्रह्म हैं। वह शरीर छूटने पर उसी अपने विचार-स्वरूप, सिद्धान्तस्वरूप, को प्राप्त होता है; अर्थात सर्वशक्तिमान परब्रह्म हो जाता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। शंका करने की ज़रूरत नहीं। विचारिये और वारम्वार इस ज्ञान को मनन करिये, अनुभव करिये! देखिये! शरीर छूट जाने पर आत्मा केवल विचार मात्र रह जाता है; स्वसिद्धान्त मात्र रह जाता है। वस, जिसका जैसा सिद्धान्त है, विचार है, अनुभव है उसका वैसा ही रूप है। मरने पर उसी अवस्था को प्राप्त होता है। उसी दशा को प्राप्त होता है। वही हो जाता है। मनुष्य के लिये स्वर्ग या नरक केवल उसका ख्याल उसका विचार और उसका मन है। और कुछ नहीं। एक फिलास्फर ने भी कहा है कि "Man is not what his actions, man is what his thoughts are." वस यह जान कर विचार करो मनन करो और विश्वास रक्खो कि हम ब्रह्म हैं सर्वशक्तिमान हैं। इस वेदान्त ज्ञान को विचार द्वारा प्राप्त करो तभी दुःख से छूट सकते हो। तभी स्वतन्त्र हो सकते हो। दूसरा कोई उपाय संसार में नहीं है॥

इसलिये वेदान्ती अपने कर्त्तव्य, अपने विचार, अपने सिद्धान्त तथा अपने धर्म से कदापि नहीं हटते। यद्यपि संसार में जितने कर्म हैं सब असत्य हैं परन्तु जबतक शरीर है कर्म करना ही पड़ता है। क्योंकि कर्म करना शरीर का स्वाभाविक धर्म है।

यदि और कर्म नहीं तो खाना, सोना, मल मूत्र करना, उठना, बैठना और निमेषोन्मेष तो अवश्य ही करेगा। यदि कर्त्तव्य कर्म से धनोपार्जन करके नहीं खायगा तो चोरी करके तो अवश्य खायगा। क्योंकि खाना नहीं रुक सकता। अतएव ब्रह्मज्ञानी लोग सदां अपने कर्त्तव्य कर्म में लगे रहते हैं। कारण कि जब हम इन कर्मों को नहीं छोड़ सकते, तो अच्छे कर्मों और अपने कर्त्तव्य को क्यों छोड़ें। संसार एक ऐसे लड़ाई का मैदान है जिसके समाने तो गोली चलरही है और पीछे तोप लगा हुवा है। इसमें संसारी जीव यदि गोली रूपी पुरुषार्थ से डरकर थोड़ा भी पीछे हटे तो तोप का गोला अवश्य लगेगा। ऐसा जान कर ज्ञानी और बहादुर सिपाही पीछे पैर नहीं डालते। क्योंकि आगे की गोली से सम्भव है कि हम बच जायँ ; परन्तु पीछे हटने पर तोप से नहीं बच सकते। ठीक इसी प्रकार से पुरुषार्थियों को भी थोड़ा बहुत दुख उठाना ही पड़ता है ; परन्तु कायरों पुरुषार्थहीनों को इससे सैकड़ों गुना अधिक दुःख उठाते हुवे देखकर वे पुरुषार्थी पुरुषार्थ छोड़कर पीछे पैर नहीं डालते। सदां आगे बढ़ते और विजय तथा यश को प्राप्त करते हैं। क्योंकि जबतक हम स्वप्ने में हैं तब तक स्वप्ने का घाव भी दुःख देता है। उसी प्रकार ज्ञानी लोगों को भी जबतक संसार में शरीर धारण करके हैं तब तक दुःख भोगना ही पड़ता है। आलस्य ही दुःख का मूल है। इसलिये ज्ञानी लोग

पुरुपार्थ छोड़कर आलस्य के गर्त में कभी नहीं गिरते । ज्ञानियों के हृदय में "पुरुपार्थ," "पुरुपार्थ" यही सदा उठता रहता है। ज्ञानियों के निकट आलस्य से बढ़ कर दूसरा कोई पाप नहीं ॥

इति तृतीयोऽध्यायः ।

ज्ञानियों का कार्य्य क्षेत्र में विजय ।

ज्ञानी लोग संसार को असत्य और अपने को ब्रह्म मानते हैं । इसलिये वे निर्भय होते हैं । वे जिस सुगमता वो सुन्दरता से अपने कार्य्य को सम्पादन करते हैं वैसे अज्ञानी जीव कभी नहीं कर सकते । जैसे दो लड़के थे एक ज्ञानी दूसरा अज्ञानी । एक ऐसा था जो संसार को सत्य मानता था, दूसरा असत्य । एक लाभ हानि में समबुद्धि था, दूसरा केवल लाभ उठाने के धुन में मग्न था ॥

अब दोनों के परीक्षा का समय आया । इनमें जो अज्ञानी था वह ज्ञानी की अपेक्षा अपने पुस्तक को अधिक याद किये था । परन्तु जिस समय वे दोनों परीक्षक के सामने खड़े हुवे उस समय अज्ञानी लड़के का शरीर कांपने और दिल धड़कने लगा । इससे जो इसे याद था सो भी भूल गया; और परीक्षक के सामने अपने याद किये हुवे विषय को भी भली भाँति न कह सका । फल उसका यह हुवा कि, वह परीक्षा में उत्तीर्ण न हो सका । इसका कारण यह था कि वह लड़का लाभ हानि में सम और अपने को ब्रह्म तथा संसार को असत्य नहीं समझता था । हर

वक्त यही सोचता था कि ऐसा न हो कि हम उत्तीर्ण न हों । इसीसे उसका शरीर कांपने लगाथा । यदि वह लाभ हानि में सम विचार रखकर अपने कर्त्तव्य कर्म पर खड़ा रहता तो यह दशा कदापि न होती । परन्तु वह ज्ञानी लड़का अपने को ब्रह्म और संसार को असत्य समझता था । वह लाभ तथा हानि में सम बुद्धि रखता और अपने कर्त्तव्य में अचल था । इस ज्ञान से उसके हृदय में वह बल आगया था कि वह हिल न सका । और निर्भय होकर बराबर परीक्षक को उत्तर देता रहा । फल यह हुवा कि परीक्षा में उत्तीर्ण होगया । ऐसे अनेक दृश्य हमारे पाठक महाशयों के भी सामने आये होंगे । जिसमे वे इस लेख के आशय को भली प्रकार समझ सकते हैं । न्यायालयों में तो ऐसे दृश्य नित्य देखने में आते हैं । कितनेक गवाह तथा वादी प्रति-वादी न्यायाधीश के सामने खड़े होते ही डर जाते हैं । और अपने मतलब को भी भली प्रकार नहीं कह सकते ॥

खड़ा होता हूँ दिल हिल जाता है ।
सारा बल खाक में मिल जाता है ॥
ज्ञान होता तो दिल में तसकीन होता ।
अपना पुरुषार्थ इस प्रकार क्यों खोता ॥

तात्पर्य्य कहने का यह है कि ज्ञान न होने के कारण वह अपने को न्यायाधीश से नीच समझता है । और यह समझकर " कि ऐसा न हो कि न्यायाधीश हमारे कुछ विरुद्ध लिखें " वह

अपने आगामि हानि तथा न्यायाधीश के रोब में आकर डर जाता है। परन्तु ज्ञानी अपने आगामि हानि की कुछ परवाह नहीं करता। वह अपने को ब्रह्म जान कर सब के सामने निर्भय रहता है। भगवान श्रीकृष्ण ने लड़ाई में अर्जुन की किसी शास्त्र द्वारा सहायता नहीं की, अपनी सेना द्वारा सहायता नहीं की; केवल ज्ञान द्वारा सहायता की थी। देखिये ज्ञान का बल कैसा आश्चर्य्यजनक है। यह ज्ञान ही का प्रताप था कि अर्ज्जुन ने महाभारत ऐसी लड़ाई को अनायास में जीत लिया। कितनेक पहलवान ऐसे हुवे हैं जो किसी साधु वा सन्यासी की विभूति लेकर अखाड़े में जाते और अपने से डेढ़े पहलवान को पछाड़ देते हैं। इसका क्या कारण ? साधु की विभूति लेने पर उसको यह विश्वास पड़ जाता है कि हमारा बल बढ़ गया। वह यह जानता है कि अब हम नहीं गिरेंगे। इस-से वह निडर होकर लड़ता है। यही निडरता का ज्ञान ही उसके जीत का कारण होता है। वास्तव में विभूति के भीतर कुछ विशेष शक्ति नहीं होती ॥

प्र०—यदि वास्तव में हम ब्रह्म हैं तो ज्ञान होने पर उसी क्षण सर्वशक्तिमान क्यों नहीं हो जाते ?

उ०—एक शेर का बच्चा छोटे ही पर जङ्गल में से सरकश वाले पंकड़ लाये। और उसे पिंन्जड़े में बन्द कर दिया। दूध इत्यादि खिलाकर लोगों ने उसका पालन पोषण किय मांस न खाने

तथा शेर का साथ न होने से । वह और शेरों के समान खूँखार नहीं था । क्योंकि वह यह नहीं जानता था कि हम शेर हैं । कई वार ऐसा हुवा कि वह पिञ्जड़े में से निकला भी परन्तु लोगों ने उसे फिर पकड़ कर बन्द कर दिया ।

कुछ दिनों के अन्तर एक जङ्गली बड़ा शेर किसी प्रकार से जाल में फँसाकर पकड़ लाया गया और वह भी वहीं उसी शेर के पास एक मज़बूत पिंजड़े में रक्खा गया । वह उस समय चारों तरफ घूमता, गुर्राता और निकलने की कोशिस करता । इसे देखकर उस बच्चे वा अज्ञानी शेर ने पूँछा कि तुम इस प्रकार निकलने की कोशिस क्यों करते हो ? क्या बाहर निकलने पर फिर तुम्हें लोग भीतर नहीं कर सकते ? देखो हम भी तो तुमारे समान हैं, परंतु जब कभी बाहर निकले लोगों ने फिर इसी पिंजड़े में डाल दिया ।

उस शेर ने जवाब दिया कि ऐ अज्ञानी और बच्चे शेर ! तुम यह नहीं जानते कि हम शेर हैं । तुम अपने वास्तविक रूप को नहीं जानते । यही कारण है कि लोगों ने पिंजड़े से निकलने पर भी तुमको पकड़ कर फिर बन्द कर दिया । यदि तुम अपने को शेर जानते तो तुमारे में वह शक्ति होती कि तुमारे एक बार गुर्रा के देने से पकड़नेवाले लोग भाग जाते । अब से भी याद रक्खो कि हम शेर हैं; हम शक्तिमान जानवरों के राजा हैं । बस तुमको फिर कोई नहीं पकड़ सकेगा ॥

कुछ दिनों के बाद वह बड़ा जङ्गली शेर छूट गया। छूटते ही बड़ा भारी शोर मचा और सारे शहर में खलबली पड़ गई। वेही पकड़ने वाले जो अज्ञानी शेर को पकड़ लेते थे उसके नज़दीक तक नहीं आये और सब तितर बितर होकर भाग गये।

यह देखकर अज्ञानी शेर की आंखें खुल गईं। और वह भी एक दिन मौका पाकर निकल पड़ा। और शेर की भांति गुर्राने, झपटने और गर्जने लगा। यह देखकर पकड़ने वालों ने जाना कि यह भी पागल हो गया, फिर तो उसके निकट कोई न जा सका। बस वह बन्धन से छूट कर जंगल में विचरने लगा।

इसी प्रकार यह जीव जब तक पिंजड़े में है ज्ञानी होने पर भी अपनी पूर्ण शक्ति नहीं दिखला सकता। परन्तु याद रहे कि जिस समय यह शरीर रूपी पिंजडा नष्ट हो जायगा; यह शरीर रूपी पिंजडा टूट जायगा; यह शरीर रूपी बन्धन खुल जायगा यह जीव साक्षात परब्रह्म सर्वशक्तिमान ईश्वर हो जायगा। हो क्या जायगा यह तो साक्षात ईश्वर था ही। परन्तु अपने स्वरूप को भुलवाकर शरीर रूपी पिंजड़े में आगया था। इसीसे शक्तिहीन विदित होता था। अब यह अपने स्वरूप को प्राप्त हुवा अब इसे कोई बाँध नहीं सकता॥

प्र०-क्या शरीरधारी के लिये इस ज्ञान से कुछ लाभ नहीं है?

उ०—लाभ क्यों नहीं है, जैसा कि हम पहले कह चुके कि ज्ञानी पुरुष निड़र, पुरुषार्थी उद्योगी और कर्मबीर होता है। वह जिस कार्य्य पर आरूढ हो जाता है। उससे पीछे नहीं हटता, एक वार हमने देखा था कि एक मेले में एक मकान के पास एक पिंजड़ा रक्खा हुवा था और उसमें एक शेर बन्द था। सैंकड़ों मनुष्य उसके चारो तरफ़ जमा थे और उसे देख रहे थे कितनेक उसके अत्यन्त निकट जाकर उसे अपने छड़ी द्वारा छेड़ भी देते थे। इतने ही में वह पिंजड़े में गर्जना और कूदना शुरू किया कि, जितने लोग थे सब वहां से भाग गये। उनको भागते देख मेले में बडी भारी खलवली पड़ी। और वही मेला वही स्थान जो अभी सहस्रों मनुष्यों से पूर्ण था। वहां एक मनुष्य भी दिखाई नहीं पडता। सारा मैदान खाली है। केवल एक वीर वही पिञ्जरबद्ध बद्ध शेर उस मैदान में अकेला पिंजडे में खड़ा हुवा गर्ज रहा है। विचारिये और इस बात पर ध्यान दीजिये ; क्या शेर पिंजड़े से छूट गया था ? फिर लोग क्यों भागे ?

बस, हे पुरुषार्थियों ! कर्मबीरों ! और वेदान्तीगण ! यद्यपि आप इस समय पिंजड़े में बन्द हैं। यद्यपि आप इस समय शरीरधारी हैं। परन्तु ख्याल करो कि हम शेर हैं हम ब्रह्म हैं। हम सर्वशक्तिमान हैं। अपने स्वरूप में जागकर इस पिंजड़े में ही खड़े हो जावो और बोलो ॐ, ॐ, ॐ, ॐ, ॐ, ॐ, । देखो तुमारे सारे दुशमन तुमारी सारी निर्बलता,

तुमारी सारी दरिद्रता तुमारे सारे दुःख भाग गये । किसी का पता नहीं । इसका नाम है वेदान्त, इसका नाम है ब्रह्मज्ञान । जिसको जान कर मनुष्य जीते जी शक्ति वान होता और बाद मरने के मोक्ष पाता है । इसी को भुलवा कर लोग शक्तिहीन हो रहे हैं । बस, अब से भी चेतो, और जागो और कहो ॐ ॐ ॐ ।

इति चतुर्थोऽध्यायः ।

वेदान्तियों की कार्य्यपरायणता ।

प्र०—आपके मत से तो सब ईश्वर ही करता है । इस ज्ञान से भी लोग आलसी हो जायँगे । क्योंकि सब लोग यही सोचकर बैठ रहेंगे कि जो ईश्वर चाहेंगे वही होगा वृथा प्रयत्न क्यों करें ॥

उ०—इस ज्ञान से अज्ञानी लोग निष्क्रिय और आलसी हो सकते हैं । ज्ञानी नहीं । क्योंकि ज्ञानी अपने ही को ईश्वर मानता है । उसके ज्ञान से ईश्वर कोई दूसरा पदार्थ नहीं । वह स्वयं ईश्वर है इसलिये वह इस ज्ञान से कि, "सब ईश्वर ही करते हैं" कभी अपने प्रयत्न को नहीं छोड़ता किन्तु उसका प्रयत्न उसकी पुरुषार्थ और भी अधिक बढ़ जाती है ॥

यदि सब ईश्वर ही करते हैं । यदि बिना ईश्वर के संसार में एक तृण भी नहीं हट सकता । यदि बिना ईश्वर के हम कुछ नहीं कर सकते । तो आप ही बतलाइये कि बिना ईश्वर के हम

प्रयत्न करना कैसे छोड़ सकते हैं । क्या इसे हम अपनी इच्छा से करलेंगे । क्या इसमें हम स्वतन्त्र हो जायँगे । यदि नहीं ; तो यह आप कैसे कह सकते हैं कि इस ज्ञान से लोग प्रयत्न करना छोड देंगे । जैसे वे करने में परतन्त्र हैं वैसे छोड़ने में भी परतन्त्र हैं । इसलिये इस ज्ञान से उद्योग, प्रयत्न और कर्मों का त्यागना भी सिद्ध नहीं होता ॥

संसार में दो शक्तियां कार्य्य कर रही हैं । एक, आज्ञात । दूसरी, ज्ञात । अब संसार के किसी एक देश को ग्रहण कर विचार करिये । जैसे, आपका शरीर । इसमें उपरोक्त दोनों शक्तियां काम करती हैं । शरीर के बाहर वा शरीर में जो कार्य्य हमारे मन, बुद्धि, चित्त या ख्याल के योग से होता है ; वा जिसको हमारा मन, बुद्धि, चित्त या ख्याल जानता है उसे ज्ञात शक्ति कहते हैं । जैसे, खाना, पीना, चलना, दौड़ना, मारना, लिखना और पढ़ना । इन सब कामों को हमारा मन, विचार-शक्ति अर्थात बुद्धि, चित्त या ख्याल जानता है, कि आज हम दोबार खाये, चार बार पानी पीये, तीन कोस चले, फुटबाल के फील्ड में एक घण्टा दौड़े, दो मनुष्यों को मारा, चार पत्र लिखे और एक पुस्तक पढ़े । ये सब कार्य्य हमारे मन से हुवे; अर्थात हमारे मन के वर्त्तमान रहने पर हमारे ख्याल के मौजूदगी में हुवे । अतएव हमारा मन इन कर्मों को जानता है । जिस शक्ति द्वारा मन ने इन सब कार्य्यों को किया उस शक्ति को हम यहां पर ज्ञात

शक्ति के नाम से लिखे हैं। क्योंकि इसके कार्य्यों को हम भली प्रकार जानते हैं।

परन्तु बहुत से ऐसे कार्य्य हैं। जो बिना हमारे मन, बुद्धि, चित्त और ख्याल के योग से या बिना इसकी सहायता के भी होता रहते और हो सकते हैं। जैसे, "निमेषोन्मेष; अर्थात पलक का गिरना और खुलना, स्वासोच्छ्वास, भोजन किये हुवे अन्न का पचना, उससे रस, खून, मांस, वीर्य्य, मज्जा और हड्डी इत्यादि का बनना, छोटी २ नाड़ियों द्वारा शरीर के प्रत्येक अंगों में रक्त का प्रवाहित होना, स्त्री के उदर में गर्भ का धारण, उसीके एक विशेष नाड़ी द्वारा उस गर्भस्थित् बालक का पोषण और पालन और उसकी रक्षा इत्यादि" ये सब वे कार्य्य हैं जो बिना हमारे मन की सहायता से होते हैं। इसी को हम यहां पर अज्ञात-शक्ति करके लिखे हैं। इसी को लोग ईश्वर की शक्ति कहते हैं। तात्पर्य्य कहने का यह है कि जैसे हम यह जानते हैं कि आज दो बार खाये, चार बार पानी पीये और दो मित्रों से मिले"। वैसे हम यह नहीं जान सकते कि हम कै बार पलक भांजे, कै बार स्वांस लिये, जो आज भोजन किये उसका कब रस बना और हृदय देश का खून जो अभी को छूटा वह कब सारे शरीर में चक्कर लगा कर यहां फिर आजायगा वा वह इस समय शरीर के किस भाग में है, अथवा यहां से वह दूसरे भाग में कब पहुँचेगा। ये सब कार्य्य ऐसे हैं जो बिना हमारे जाने बिना हमारे किये भी हो सकते

हैं । जैसे जब हम लोग गाढ़ निद्रा में सो जाते हैं । जिस समय हम लोग स्वप्न भी नहीं देखते, जिस समय हम लोग अपने मन से अपने ज्ञान से कोई भी क्रिया नहीं करते उस समय भी स्वास क्रिया, खून का बहना, और अन्न का पचना इत्यादि होता रहता है । अर्थात हम अपने जान कुछ नहीं करते । परन्तु ये सब क्रियायें शरीर में होती रहती हैं । यह जिस शक्ति से होती है उसी को ईश्वर के मानने वाले ईश्वर, और नास्तिक प्रकृत कुदरत और स्वभाव कहते हैं । इसी को हम यहां अज्ञात शक्ति लिखे हैं। अब आप लोग ज्ञात शक्ति और अज्ञात शक्ति को भली प्रकार समझ गये होंगे । अतएव अब आगे चलिये ।

वेदान्ती लोग इसी अज्ञात शक्ति को ईश्वर कहते हैं । ज्ञात शक्ति का भी प्रेकर यही एक अज्ञात शक्ति है । यही ज्ञात शक्ति ही संसार में एक स्वतन्त्र शक्ति है । जैसा कि हम अपने प्रथम खण्ड में लिख चुके हैं । परन्तु लोग इसको भूलकर अपनी ज्ञात शक्ति को ही (जिसको लोग जीव कहते हैं) स्वतन्त्र मानने लगते हैं । यही अज्ञानता है । ऐसा मानना पाप है । ऐसे मानने वाले बड़ी भूल में पड़े हैं । यही संसार बन्धन का कारण है । ऐसे माननेवाले का संसार में विजय प्राप्त करना बहुत क़ठिन है ॥

वेदान्त बतलाता है कि तुम अपनी ज्ञात–शक्ति को अज्ञात–शक्ति के साथ मिलादो । मिला क्या दो वह तो तुमारी ही शक्ति है । तुम उसको भूले हुवे हो । तुम अपने को केवल ज्ञात–शक्ति

ही मात्र जानते हो । इसी से तुम अपने को नीच, अल्पज्ञ और अल्पशक्तिमान जीव मानते हो । इसी से तुमारे में कायरता और भीरुता है । यही ज्ञान तुमारे बन्धन का कारण है । इसका त्याग करो । देखो ! वह अज्ञात–शक्ति भी तुमारी शक्ति है । यदि तुम देखते हो तो क्या आँख के पलक चलानेवाला कोई दूसरा है ? यदि तुम खाते हो तो क्या उसका पचाने वाला कोई दूसरा हो सकता है ? यदि हाथ पैर के चलानेवाले तुम हो तो क्या हाथ पैर और सारे शरीर में खून का चलानेवाला कोई दूसरा है ? कभी नहीं । उसके चलानेवाले भी तुम्ही हो वह अज्ञात–शक्ति जो तुमारे मन, बुद्धि और ख्याल से परे है वह भी तुमारी शक्ति है । तुम केवल मनोमय, बुद्धिमय और ख्याल मात्र नहीं हो । किन्तु तुमारा वास्तविक रूप इसके परे है । मन, बुद्धि और ख्याल ये सब तुमारे हैं । परन्तु तुम स्वयं मन, बुद्धि, चित्त और ख्याल नहीं हो सकते । तुमारी वस्तु स्वयं तुमारा आत्मा नहीं हो सकता । टोपी तुमारी है परन्तु तुम स्वयं टोपी नहीं हो सकते । आंख तुमारी है परन्तु तुम आंख नहीं हो सकते । शरीर तुमारा है परन्तु तुम स्वयं शरीर नहीं हो । इसी प्रकार दिमाग़ और मन तुमारा है परन्तु तुम दिमाग़ और मन नहीं हो तुम इससे परे शुद्ध सच्चिदानन्द और परब्रह्म हो ।

सुषुप्ति अवस्था में अर्थात जब हम गाढ निद्रा से सो जाते हैं । और स्वप्न भी नहीं देख सकते । उस समय हमारा मन वा

दिमाग नहीं रह जाता । यदि हम मन और दिमाग़ ही मात्र होते तो उस समय हमारी मृत्यु हो जाती । परन्तु हम फिर जाग उठते हैं । सोते समय हमारा मन नहीं रहता परन्तु वह जो हमारे मन से भी परे है ; जो हमारा वास्तविक आत्मा है ; वह उस समय रह जाता है । क्योंकि जब हम सो कर उठते हैं तो कहते हैं कि खूब सुख से सोये । यदि हम वा हमारा आत्मा उस समय वहां पर न होता तो उस सुख का अनुभव कौन करता । इससे यह सिद्ध होता है कि हमारा आत्मा मन से परे है । इसीसे सो जाने पर भी जब कि हमारा मन और दिमाग़ नहीं काम करता तब भी खून का संचार और स्वांस का लेना देना इत्यादि होता रहता है । इससे यह सिद्ध होता है कि इस अज्ञात कर्म के करनेवाले भी हमी हैं । जब हमारा आत्मा निकल जाता है तो यह सब कुछ भी नहीं होता । इसको वारम्वार विचारिये । देखिये ! वह अज्ञात शक्ति आप ही हैं ।

जिस शक्ति से आपके शरीर में खून का संचार होता है । वही शक्ति है जिसके कारण जानवरों, चिड़ियों और वृक्षों में खून और रसका संचार होता है । वही शक्ति जो मनुष्यों, पशुवों तथा वृक्षों को बढ़ाती और नदियों को बहाती है । वही शक्ति है जो सृष्टि को उत्पन्न करती सूर्य्य वो चन्द्र को आकाश में चलाती है । यही ईश्वरीय शक्ति है । इसी को ईश्वर कहते हैं । देखो ! वही शक्ति तुमारे शरीर के भीतर है । और वही शक्ति

तुमारी शक्ति है । वह अज्ञात शक्ति वह अज्ञात ईश्वर जिसे तुम खोज रहे थे, जिसे तुम नहीं जानते थे, जिसके विना तुम विकल थे वह ईश्वर तुमारे पास है । वह तुमारे आत्मा में है । वह स्वयं तुम हो । देखो आज तुमने उसका दर्शन किया । तुमने उसको जाना ॥

अब विचारने की वात यह है, कि जिस वेदान्त के ज्ञान से ईश्वर हमी हैं । वहां पर इस सिद्धान्त से, कि सब ईश्वर करते हैं " हम आलसी कैसे हो सकते हैं । मनोमय जो आत्मा है अर्थात जहां तक हमारे आत्मा का मन से सम्बन्ध है । उसी विचारमय आत्मा को जीवात्मा कहते हैं । उसी को प्रथम खंड़ में परतन्त्र कहा है । परन्तु वेदान्त वतलाता है कि इस शक्ति को तुच्छ जानकर, और ब्रह्मज्ञान से इसका वन्धन तोड़ कर इस तुच्छ परतन्त्र शक्ति को उस स्वतन्त्र ईश्वरीय शक्ति में मिलादो । ज्यों २ तुम इस ज्ञान का अभ्यास करोगे तुमारी शक्ति वढ़ती जायगी । यहां तक कि जिस समय यह तुमारा शरीर (जो तुमारे ही अज्ञान से अल्पशक्ति का रचा गया है) छूट जायगा तो तुम साक्षात परब्रह्म सर्वशक्तिमान हो जावोगे । यद्यपि आप इस समय भी सर्वशक्तिमान हैं । परन्तु अभी आपका इस अल्पशक्तिवाले शरीर के साथ सम्बन्ध है । इससे तुम उस शक्ति को नहीं दिखला सकते । जैसे, कोई वल होते हुवे भी एक पतले वेंत से एक वह्रे को नहीं टार सकता ।

उसी प्रकार वेदान्ती सर्वशक्तिमान होते हुवे भी इस शरीर के साथ सम्बन्ध होने से इस अल्पशक्तिवाले शरीर से उस कार्य्य को नहीं कर सकते। तिसपर भी और शरीरधारियों की अपेक्षा उनका कार्य्य अनोखा होता है। वह शरीर रहते भी अद्भुत और आश्चर्य्यजनक शूरता, वीरता और बहादुरी दिखला सकते हैं। उनके कार्य्यों को देख कर मामूली लोग दांतों में अंगुली दाबते और आश्चर्य्य में डूब जाते हैं इसके विषय में हम पहले बहुत कुछ कह चुके हैं। और उनमें से कुछ वेदान्तियों का नाम भी गिना दिया है॥

इति पञ्चमोऽध्यायः।

वेदान्तियों का विचित्र कार्य्य।

जिसको यह ज्ञान हो जाता है कि सब ईश्वर ही करते हैं। उससे ईश्वर अधिक काम लेते हैं। और उस मनुष्य का काम अधिक उज्वल, सुन्दर और संसारोपकारी होता है। उसका दिया हुवा उपदेश ईश्वर का उपदेश होता है। उसके संगति से शान्ति और सुख का सागर उमड़ आता है। उसके पास प्रेम का प्रवाह और ज्ञान का प्रकाश हर समय चमकता रहता है। उसके कथन में नवीन जीवन और नवीन जोश उत्पन्न करने की शक्ति होती है।

यही कारण है कि कई एक प्राचीन ऋषियों ने अपने उपदेश को ईश्वर का उपदेश कहा है। ईशू मसीह अपनी शिक्षा

को ईश्वर की आज्ञा माने हैं। मुहम्मद साहव अपने कथन को ईश्वर का कलाम कहे हैं।

इसीसे उपरोक्त महात्मा गण अपने समय के मनुष्यों के योग्यतानुसार उनमें नवीन जीवन तथा अद्भुत शक्ति डाल गये। क्योंकि उस समय के मनुष्यों के योग्यतानुसार उन के लिये वही उपदेश योग्य था। जो उन महात्मावों ने दिया। जैसे जिसने अभी कुछ नहीं पढ़ा है उनके लिये पहली पुस्तक का पढ़ानाही उपयुक्त है। कारण कि ऐसे समय में उन मनुष्यों के योग्यतानुसार किसी बड़े ज्ञान का उपदेश देना व्यर्थ है। इसीसे उन महात्मावों ने अपने देशवालों को प्रकट रूप से इस वेदान्तसिद्धान्त का उपदेश नहीं दिया। क्योंकि उस समय वे मनुष्य इस ज्ञान के योग्य नहीं थे। परन्तु सब महात्मावों के उपदेश में गुप्त रूप से इस वेदान्त का झलक पाया जाता है। और वे स्वयं इस ज्ञान से परिचित थे। जैसा कि प्रसंग पड़ने पर दिखलाते जायँगे। यदि वे इस ज्ञान को न मानते तो मुहम्मद अपनी वनाई हुई पुस्तक को खुदा का कलाम न कहते। इशू मसीह अपनी शिक्षा को ईश्वरीय आज्ञा न वतलाते।

जब ऐसा ज्ञान हो जाता है कि सब ईश्वर ही करते हैं तो वह अपने कर्त्तव्य कर्म से पीछे नहीं हटता। जैसे; अर्जुन यह न जानकर " कि सब ईश्वर ही करते हैं " अपने कर्त्तव्य

कर्म को छोड़ बैठे थे । जब वे यह जान गये कि हमें अपना कर्त्तव्य कर्म करना चाहिए इसमें पाप पुण्य कुछ नहीं सब ईश्वर के कृपा से होता है; तो वे बड़ी वीरता से अपने कर्त्तव्य कर्म को पूर्ण कर दिखाये । यदि यह ज्ञान न हुवा होता तब भी वह इस कर्म को करते परन्तु संशय रहित होकर इतनी वीरता के साथ नहीं कर सकते । सबसे बड़ी हानि बिना ब्रह्मज्ञान के यह होती है कि वह अपने इसी विचारानुसार मरने के बाद बड़े भारी पाप कर्म के बन्धन में पड़ता है । क्योंकि उसको यह विश्वास रहता है कि हम पाप कर्म कर रहे हैं । प्रथम खण्ड में हम इस बात को सिद्ध कर चुके हैं कि जिसका जैसा विश्वास होता है उसको वैसा ही देखने में आता है । विशेष कर मरने के बाद जब की यह आत्मा मनोमय कोश वा इच्छामय शरीर में रहता है; अर्थात जब कि यह आत्मा केवल विचारमय इच्छामय रह जाता है और शरीर नहीं रहता—उस समय वह पुरुष, वह आत्मा या वह मनुष्य, जैसा विचार करता है जैसा विश्वास रखता है वही रूप उसके सामने खड़ा हो जाता है । क्योंकि उसकी भावना ही उसका रूप होता है । जैसी वह भावना करता है वैसा ही अपने को भी पाता है । यदि उसकी भावना यह हुई कि हम पापी हैं, हम नीच हैं, हम सर्वशक्तिमान् नहीं हैं, हम एक क्षुद्र जीवात्मा हैं तो वह अपने को वैसा ही पाता है । वह अपने भावना के अनुसार ही कर्म बन्धन में पड़कर दुःख भोगता है ।

प्र० क्या कोई अपने से दुःख भोगना चाहता है ? यदि नहीं, तो वह मनुष्य जिसकी भावना जन्मकाल में वा मनुष्य शरीर में यह रहती है " कि हम ब्रह्म वा सर्वशक्तिमान ईश्वर नहीं हैं " वह जिस समय मरने के अनन्तर यह देखता है कि हम इस भावना से दुःख में पड़ते हैं तो वह उस भावना को छोड़ क्यों नहीं देता ?

उ० जन्मकाल में वा मरने के पहले जो भावना दृढ़ हो जाती है वह भावना मरने के बाद प्रयत्न करने पर भी दूर नहीं होती बारम्बार वही भावना फुरती और उठती है। उससे छुटकारा नहीं मिलता। जैसे, लड़कपन में जो स्वभाव पड़जाता है वह शीघ्र छुडाये नहीं छूटता। हम बड़े होने पर जानते हैं कि यह कर्म बुरा है, परन्तु फिर भी वही कर्म करते हैं। बारम्बार वही बात स्मरण आती है। वह बात दूर नहीं होती। उसी प्रकार जबतक यह भावना दूर नहीं होती वह अपनी भावना के अनुसार दुःख भोगता है। और उसे दूर नहीं कर सकता। इसी को नरक कहते हैं॥

बहुत दिनों के बाद जब इसकी भावना क्षीण हो जाती है। तो वह इस भावनामय शरीर से अधिक सुख स्थूल शरीर वा सांसारिक शरीर में देख कर फिर संसार में जन्म लेता है।

इसी प्रकार जिसका पुण्य प्रबल होता है। जिसकी पुण्य भावना दृढ़ होती है वह उसी अपने भावना के अनुसार कुछ

काल तक सुख भोगता है । परन्तु कुछ दिनों के अनन्तर यह पुण्य भावना भी क्षीण होने लगती है । उस समय यह मनुष्य इस भावनामय शरीर से अधिक सुख स्थूल शरीर में देख कर उस भावना को त्याग कर फिर संसार में जन्म लेता है । इस प्रकार वह बारम्बार जन्म व मरण के फेर में पड़ा रहता है । जबतक ब्रह्मज्ञान नहीं होता इस आवागमन के बन्धन से नहीं छूटता ।

अब आपही विचारिये जबकी हमारी नीच भावना ही हमारे दुःख का कारण है । तो हम इस भावना को क्यों नहीं छोड़ते । हमारे आत्मस्वरूप पाठक गण ! इस बात को निश्चित जानकर आज ही से इस भावना को दृढ़ कीजिये कि हम सर्व शक्तिमान ईश्वर हैं । हमें बाँधने में कोई समर्थ नहीं हो सकता । यह सारा संसार हमारा बनाया हुवा है । यह सारा संसार हमारा स्वरूप है । हमसे ऊपर हमसे श्रेष्ठ दूसरा कोई अन्य पुरुष नहीं। हमीं जगदीश्वर जगदाधार और सबके नियामक परमेश्वर हैं । यह सत्य है, सत्य है सत्य है । हम सत्यस्वरूप हैं ऐसा बारम्बार विचार करके भावना को दृढ करो । तभी इस दुःखसागर संसारसागर से पार हो सकते हो ।

प्र०—क्या हम अपने भावना मय शरीर को अपने सिद्धान्तमय आत्मा को जीते जी इस शरीर के रहते भी देख सकते हैं ? क्या इस शरीर के रहते भी हम अपने सर्वशक्तिमान आत्मा को प्रत्यक्ष देख सकते हैं ?

उ०—हां, जो लोग ध्यान योग द्वारा सम्प्रज्ञात समाधि तक पंहुंच सकते हैं। वे देखेंगे कि हम जो भावना करते हैं जैसा संकल्प करते हैं। वैसा हमारा स्वरूप हो जाता है। जो ख्याल करते हैं वही हमारे सामने आता है। यदि हम ख्याल करते हैं कि दश सूर्य्य दिखलाई दे तो दश सूर्य्य दिखलाई देता है। यदि ख्याल करते हैं कि आकाश में उड़ें तो एक क्षण में सैकड़ों मील उड़जाते हैं। क्योंकि समाधिकाल में भावनामय शरीर होता है। योगी उस समय सत्यसंकल्प होता है। जैसे ईश्वर सत्यसंकल्प होता है कि उसने ज्यों भावना किया कि यह संसार हो जाय। बस, हो गया। वही शक्ति आप अपने में भी देखेंगे। क्यों कि आप वास्तव में सर्वशक्तिमान् हैं। वही समाधिकाल में प्रत्यक्ष देखने में आता है। इसीसे योगशास्त्र में कहा है।

तदा द्रष्टुः स्वरूपेवस्थानम्।

अर्थ—इस समय योगी अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त होता है। इसलिये योगी को इस अवस्था में पहुँचने पर यह निश्चय होजाता है कि हम ब्रह्म हैं। हम सर्व शक्तिमान् हैं। अपने को ब्रह्म न मानना अज्ञानता है इतनाही नहीं किन्तु अपने को ब्रह्म न मानना महापाप है।

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः।
तां प्रेत्याभिगच्छन्ति ये चात्महनः जनाः॥

यह वेद का मन्त्र है इसका अर्थ यह है कि जो लोग अपने को नीच समझते हैं वे अपने आत्मा का हनन करते हैं वे आत्महन् लोग उसी नरक में गिरते हैं जिसमें खुदकुशी और आत्महत्या करनेवाले गिरते हैं। क्यों कि आत्मा का जैसा रूप है वैसा न मानना और उस रूप का अपनी अज्ञानता से नाश कर देना यही उसकी हत्या है। बल्कि यह हत्या और मरण से भी बढ़कर है। देखिये! भगवद्गीता में भी कहा है ॥

सम्भावितस्य चाकीर्तिः मरणादतिरिच्यते ॥

प्र०—मरने के बाद और समाधि दोनों समयों में मनुष्य को भावनामय शरीर मिलता है तो दोनों में भेद क्या है?

उ०—समाधिकाल में, मरने के समान, स्थूल शरीर से विशेष सम्बन्ध छूट जाता है। मगर उस समय सत्यसंकल्पमय तथा शुद्ध भावनामय शरीर मिलता है। परन्तु मरने के बाद का शरीर शुद्ध भावनायें तथा पुण्यमय नहीं होता किन्तु शुद्धाशुद्ध उभयभावनामय होता है; अर्थात मरने के अनन्तर शुद्ध और अशुद्ध दोनों भावनायें रहती हैं। उसीके अनुसार यह स्वर्ग, नरक या सुख और दुःख को भोगता है। परन्तु समाधिकाल में यह आत्मा केवल शुद्ध भावनामय होता है। अतएव व समाधिकाल से और इस अवस्था से बहुत भेद है।

प्र०—संप्रज्ञात समाधि में आत्मा क्यों शुद्ध भावना-

मय होता है, इसकी अशुद्ध भावना कहां चली जाती है ?

उ०—प्रारब्धकर्मानुसार मरने के बाद यह आत्मा विवश होकर इस अवस्था को प्राप्त होता है । इसलिये इसकी शुद्ध और अशुद्ध प्रत्येक भावनायें इसके साथ रहती हैं । यह वहां शुद्ध होकर नहीं जाता । जैसे जो लोग कचहरी के इजलासों पर सिपाहियों द्वारा पकड़कर मोल्जिम की अवस्था में जाते हैं । वे मैले कुचैले जिस हालत में पकड़े जाते हैं उसी हालत में पेश कर दिये जाते हैं । परन्तु वकील और बैरिष्टर जो अपने खुशी से जाते हैं । वह बिना साफ कपड़ा और गावन इत्यादि विशेष कपड़ा पहिने वहां नहीं जा सकते । उसी प्रकार से योगी का भावना जिस समय अत्यन्त शुद्ध होजाता है । उस समय वह समाधि अवस्था को प्राप्त होता है; परन्तु चित्त सर्वदा एक अवस्था में नहीं रहता है। ४ चार वा ५ मिनट के बाद जिस समय उसका चित्त शुद्ध भावना से विचलित होता है फिर समाधि टूट जाती है । इसी प्रकार अभ्यास करते २ जितनी देर तक हम अपने चित्त को शुद्ध भावना में रख सकते हैं उतनी देर तक हम क्रमशः समाधि में भी रह सकते हैं । तात्पर्य कहने का यह है कि बिना शुद्ध भावना हुवे हम समाधि अवस्था को नहीं प्राप्त हो सकते । इसलिये इस समय आत्मा शुद्ध भावनामय होता है । और शुद्ध भावनामय होने से आनन्द मय होता है । उस समय का चित्त सत्वगुण मय होने से वह आत्मा प्रकाशमय

होता है । उसके चारों तरफ आनन्दमय ज्योति फैली रहती है । उस समय चित्त में ब्रह्मानन्द का लहर उठने लगता है। और आत्मा आनन्द से विह्वल हो जाता है। उस समय विना किसी के कहे आनन्दमय ॐ ॐ ॐ का शब्द सुनाई देता है। वाह वे धन्य हैं जो इस अवस्था को जीते जी प्राप्त कर लेते हैं। इसे किसी शायर ने कहा है कि:-

जीते जी जो मर देखा।
मज़ा जीने का सरवसर देखा॥

इसके ऊपर की अवस्था जिसमें यह भावना भी नहीं रह जाती जिसमें आत्मा अपने साक्षात् स्वरूप को प्राप्त होता है उसे असंप्रज्ञात, निर्बीज, निर्विकल्प तथा शून्य समाधि कहते हैं। यह अवस्था विशेष कर कहने योग्य नहीं है किन्तु अनिर्वचनीय है। इसलिये स्वयं अनुभव करने योग्य है। तभी इस अवस्था का यथार्थ ज्ञान हो सकता है।

निद्रा में योगाभ्यास।

प्र०—संप्रज्ञात समाधि प्राप्त करने के लिये कौन २ से सरल उपाय हैं ?

उ०—कुछेक उपाय हम पीछे वरणन कर चुके हैं फिर भी कुछ नवीन और सरल यहां पर भी लिखते हैं:—

सर्वदा यह चिन्तन किया करे कि हम सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान

परब्रह्म परमात्मा हैं। यह सारा संसार असत्य और भ्रम मात्र है। यह संसार कुछ नहीं सब तरफ से शून्य है। यह केवल स्वप्न मात्र है। ऐसा करने से कभी आपको स्वप्ने में भी यह ख्याल हो जायगा कि यह जो कुछ है वह स्वप्ना है। यह सब शून्य है। हम सर्वशक्तिमान हैं। ऐसा ख्याल करते ही वह स्वप्ने की सृष्टि वहीं विलीन हो जायगी। और हम उसी योगावस्था को प्राप्त हो जायँगे जिसे संप्रज्ञात समाधि कहते हैं।

स्वप्ने में लोगों को स्वप्ना सत्य मालूम होता है। परन्तु स्वप्नकाल में यदि यह मालूम हो जाय कि यह स्वप्न है भ्रम है। यदि स्वप्ने में ही आपको यह मालूम हो जाय कि यह सब कुछ शून्य है और हम सर्वशक्तिमान हैं। तो उस समय आप एक आश्चर्य्यजनक आनन्दमय अवस्था को प्राप्त होंगे। आप उसी समय देखियेगा कि हम सचमुच सारे संसार के उत्पन्न करनेवाले ईश्वर हैं। यदि यह लेख भी स्वप्न में आपको याद आ जायगा तो आप स्वप्न से समाधि अवस्था को अनायास प्राप्त हो जाइयेगा। इसमें कुछ सन्देह नहीं।

जो लोग योग नहीं सिद्ध कर सकते उनको केवल इस पुस्तक का वारम्वार पाठ करना चाहिये। इसके पाठ करने से यदि आपको यह दृढ़ विश्वास हो जायगा कि हम ब्रह्म हैं हम ईश्वर हैं; तो आप भी इस शरीर के छूटने बाद उसी ब्रह्मानन्द को प्राप्त होइयेगा जिसे योगी प्राप्त करते हैं। वेदान्त में दृढ़

विश्वास होने ही के लिये योग किया जाता है क्योंकि अपने अनु-भव से दृढ़ विश्वास होता है। अतएव यदि वेदान्त के श्रवण मनन निदिध्यासने से वेदान्त में दृढ़ विश्वास है तो वह भी उसी गति को प्राप्त होता जिसे योगी प्राप्त करते हैं।

इति षष्ठोऽध्यायः।

ईश्वर।

प्र०—जीव जिसको आप ब्रह्म का कल्पित भेद मानते हैं वह एक है वा अनेक?

उ०—जीव अनेक हैं। यदि जीव अनेक न होते तो एक जीव के पढ़ने से सब विद्वान हो जाते वा एक जीव जब किसी बात को जानता तो सब जान जाते। अतः यह सिद्ध है कि जीव अनेक हैं।

प्र०—जीव निराकार है वा साकार?

उ०—जीव, निराकार होता है; परन्तु उसका कल्पित शरीर साकार है।

प्र०—ब्रह्म निराकार है वा साकार? उसके शरीर होता है वा नहीं?

उ०—ब्रह्म निराकार है, उसको शरीर नहीं होता॥

प्र०—ईश्वर निराकार है वा साकार? इसको शरीर होता है वा नहीं?

उ०—ईश्वर वास्तव में निराकार है, परन्तु उसके शरीर होता है। इस विषय पर हम प्रथम खण्ड में बहुत कुछ लिख चुके हैं। अतएव यहां पर उसे नहीं लिख सकते। आजकल लोग इस विषय पर बहुत वादाविवाद किया करते हैं। एक कहता है कि ईश्वर निराकार है दूसरा कहता है कि साकार। परन्तु इस पर बहस करना व्यर्थ है. क्योंकि वास्तव में किसी मज़हब के लोग ईश्वर को साकार नहीं मान सकते और न ईश्वर कभी साकार हो सकता है। हां अलबत ईश्वर का शरीर साकार है। परन्तु शरीर के होने से ईश्वर नहीं साकार हो सकता। अब देखिये ! एक तार्किक मनुष्य को ईश्वर को निराकार मानते हुवे देखकर एक धार्मिक और मज़हबी मनुष्य अपने धर्म पुस्तक और मज़हबी पुस्तकों में ईश्वर को साकार देखकर उस तार्किक से विवाद करने के लिये उद्यत हो जाता है। वह यह नहीं समझता कि धर्मपुस्तकों में ईश्वर का शरीर होने के कारण ईश्वर को साकार कहा है। वास्तव में निराकार ही है। वह तार्किक मनुष्य भी धर्मपुस्तकों के वास्तविक अर्थ को न जानकर उन धर्मपुस्तकों को असत्य बतलाता और मज़हबी मनुष्यों से झगड़ा करता है। देखिये ! लोग कितना भूल करते हैं ?

उन्हीं धर्मपुस्तकों में जिसमें ईश्वर को निराकार माना गया है, जो ईश्वर के निराकार होने के क़ट्टर पक्षपाती हैं। कहीं २ ईश्वर का साकार बर्णन भी पाया जाता है। जैसे ईसाइयों के

धर्मपुस्तक में लिखा है कि पहले पहल ईश्वर का आत्मा पानी पर डोलता था। क़यामत के बाद ईशा मसीह उसके बायें तरफ़ बैठेंगे। कुरान में खुदा को **सातवें** आसमान पर बतलाते हैं और मुहम्मद के साथ खुदाका बात चीत होना भी मानते हैं यह सब जब तक ईश्वर का शरीर न हो नहीं हो सकता । इसी प्रकार वेदों में भी ईश्वर का साकार **वर्णन** पाया जाता है। जब कि उन्हीं पुस्तकों में एक जगह निराकार और दूसरे जगह साकार वर्णन पाया जाता है तो किसे माना जाय ? यदि एक को माना जाय तो दूसरा असत्य सिद्ध होता है और एक सिद्धान्त के असत्य होने से पुस्तक अप्रमाणिक सिद्ध होगा । क्योंकि ऐसा कथन बावलों का होता है । एक बार तो निराकार २ कहें फिर वहीं उसके विरुद्ध साकार भी कह दे । इन पुस्तकों का गुप्त भेद बतलाने के लिये वेदान्त है। अतएव वेदान्त सिद्धान्त हर एक मज़हबवालों को मानना योग्य है। बिना इसके काम नहीं चल सकता। वेदान्त ही बतलाता है कि ईश्वर का शरीर साकार होने से धर्मपुस्तकों में ईश्वर को साकार कहा गया है । वास्तव में ईश्वर स्वयं निराकार निर्विकार और सर्वशक्तिमान है । ऐसा मानने से किसी धर्मपुस्तक का लेख असंगत नहीं मालूम होता और सब झगड़ा छूट जाता है ॥

इति श्री शिवकुमारशास्त्रिकृते वेदान्तसिद्धान्ते सप्तमोऽध्यायः ॥

॥ ईश्वर पांच हैं ॥

प्र०—ये शरीरधारी ईश्वर एक हैं वा कई एक ?

उ०—ये ईश्वर एक नहीं होते किन्तु कई एक हैं ।

प्र०—कई एक कितने ?

उ०—ईश्वर पाँच हैं । वे इससे अधिक वा कम किसी प्रकार नहीं हो सकते । इससे अधिक वा कम मानना युक्तियों और प्रमाणों के विरुद्ध है ।

प्र०—क्या इसको सुनकर कि वेदान्ती लोग पांच ईश्वर मानते हैं लोग हँसेंगे नहीं ? क्योंकि इस बात को एक बालक और मूर्ख भी जानता है कि ईश्वर एक है । फिर आप पांच क्यों मानते हैं ?

उ०—यह हम भी मानते हैं कि इस बात को एक मूर्ख भी जानता है कि ईश्वर एक है । परन्तु यह ईश्वरपद ब्रह्म का वाचक है । प्रायः सर्व साधारण को ईश्वर और ब्रह्म के भेद का ज्ञान कम होता है । इनके सूक्ष्म भेदों को केवल वेदान्त ही बतला सकता है। इस पुस्तक में भी कई स्थलों पर ब्रह्म शब्द ईश्वर के जगह पर उपयोग किया गया । ईश्वर का ज्ञान होते पर इस बात को आप स्वयं पहचान सकेंगे कि कहां का ईश्वर ब्रह्म पद वाचक और कहां का ईश्वर ईश्वर पद वाचक है । इसका ज्ञान न होने ही के कारण फिलासफरों तार्किकों और

धार्मिकों का आपस में झगड़ा होता है । इसका मूल कारण ईश्वर और ब्रह्म विषय की अज्ञानता है ॥

वेदान्ती तो ईश्वर ही को एक क्यों बल्कि सर्व संसार को एक मानते हैं । वास्तव में जीव, ईश्वर, महेश्वर (परमेश्वर), संसार और ब्रह्म सब एक ही हैं । भेद कुछ नहीं । भेद केवल कल्पित मात्र है, वास्तविक नहीं " किस प्रकार से इनमे भेद है और किस प्रकार से ये एक हैं " इन सूक्ष्म भेदों का ज्ञान वेदान्त से ही होता है । हँसने से नहीं । यदि हँस कर इन बातों को नहीं विचारियेगा तो इस ज्ञान से वञ्चित रहियेगा । यदि आपको पञ्च देवों पर विश्वास नहीं है तब भी इस लेख पर विचार कीजिये, यदि यह असत्य है तो विचार करने से आपके गले नहीं लिपट जायगा ॥

यदि आप यह मानते हैं कि ईश्वर को पांच, एक मूर्ख और अपढ़ भी नहीं मान सकता तो आप ही बतलाइये कि हम पांच कैसे मान सकते थे । यदि हम पांच माने हैं तो कुछ विचार करके माने होंगे । विना विचारे नहीं । क्योंकि हम किसी बात को बिना विचारे किसी के कहने या शास्त्रों, पुराणों तथा वेदों के कथन मात्र से नहीं मान लेते ॥

देखिये ! सामान्यतः लोग ज़मीन और आसमान में बहुत भेद मानते हैं और कहते हैं कि इसमें तो ज़मीन और आसमान का भेद है । परन्तु विचारने से ज़मीन और आसमान में कुछ

भेद नहीं मालूम होता । आसमान कहते हैं आकाश, अवकाश अन्तर अथवा पोल को, आसमान कहते हैं शून्य को, जहां से ज़मीन नहीं है वहीं से आकाश का अस्तित्व है; वहीं से आकाश आरम्भ हो जाता है; वहीं से ऊपर चारो ओर आकाश ही आकाश है । ज़मीन के चारो तरफ़ बिल्कुल ज़मीन से मिला हुवा आकाश ही तो है । फिर आप ही बतलाइये ज़मीन और आसमान का भेद कैसा ? कुछ नहीं, परन्तु साधारण लोग बहुत ही भेद मानते हैं। उसी प्रकार साधारण संसारी लोग संसारी पदार्थों को कुछ और ही प्रकार से देखते हैं। वे सामान्यतः संसार को सत्य, जीव ईश्वर में भेद और ईश्वर को एक मानते हैं। परन्तु जब वेदान्ती लोग विचारते हैं तो उसे कुछ औरही प्रकार का पाते हैं। संसार में यही विलक्षणता है, कि संसारी पदार्थ विचारने से कुछ औरही प्रकार के मालूम होते हैं । इसीसे वेदान्त–सिद्धान्त संसार को असत्य मानता है । क्योंकि जो आज और कल्ह कुछ और, साधारण दृष्टि से यानी विचारने से कीट मय, देखने पर और, विचारने से कुछ और, सामान्य पुरुष इसे और जानें, और फ़िलासफर कुछ और ही जानें, ऐसा संसार सिवाय असत्य के और क्या हो सकता है ?

तात्पर्य्य कहने का यह है कि सामान्य दृष्टि से आप लोग ईश्वर को पांच सुन कर हँसेंगे । परन्तु विचारिये तो मालूम

होगा कि यह यथार्थ है, यह सत्य है । इसमें अनेक युक्ति और प्रमाण हैं जो आगे लिखे जायँगे ॥

इति श्रीशिवकुमारशास्त्रिकृते वेदान्तसिद्धान्त अष्टमोऽध्यायः ।

॥ ईश्वर के पांच होने में प्रमाण ॥

प्र०–पांचो ईश्वरों के नाम क्या हैं ?

उ०–"विष्णु, सूर्य्य, गणेश, देवी और महेश्वर" येही पांचो ईश्वरों के नाम हैं ।

प्र०–ये ईश्वर पांच ही क्यों हुवे इससे अधिक वा न्यून क्यों न हुवे ?

उ०–पांच से न्यून वा अधिक होना सृष्टि क्रम विरुद्ध है। क्योंकि संसार में पांचही तत्व हैं न इससे कम न अधिक। अतः ईश्वर भी पांच से कम वा अधिक नहीं हो सकते ।

प्र०–पांच तत्व तो आपके मत से हैं। परन्तु बहुत से लोग इससे अधिक मानते हैं ?

उ०–और जितने तत्व दूसरे लोग मानते हैं वे इन्हीं पांचों के अन्तरगत हैं। इन पांच तत्वों के नाम ये हैं पृथ्वी (दृढ Solid), जल (द्रव Liquid) अग्नि (तेज Gasioos) वायु (स्पर्शवान Ether) आकाश (निराकार Etheren) अब जितने दूसरे तत्व जो दूसरे लोग माने हैं वे यदि ठोस हैं तो पृथ्वी के अन्तरगत, यदि द्रव (Liqde) है तो जल के अन्तरगत, और

यदि प्रकाशमान और दाहक शक्ति वाले हैं तो अग्नि के अन्तरगत आजायँगे । इसी प्रकार से और जितने तत्व दूसरे लोग माने हैं वे इन्हीं तत्वों के अन्तरगत हैं । अतः मुख्य तत्व पांचही हैं ।

प्र०—अच्छा तो इन तत्वों के पांच होने से ईश्वर को क्यों पांच माना जाय, इन तत्वों से ईश्वर से क्या सम्बन्ध है ? ये यदि पांच हैं तो हुवा करें ।

उ०—हम प्रथम खण्ड में कह आये हैं कि, ईश्वर उसे कहते हैं—जो भ्रम अथवा माया को वश में किये हो । जीव उसे कहते हैं—जो भ्रम अथवा माया के वश में हो । इन दोनों से जो पृथक है उसका नाम ब्रह्म है । कहने का तात्पर्य्य यह है कि ईश्वर उसीको कहते हैं जो माया अथवा भ्रम को वश में किये हो । दो वस्तु वें हैं एक जड़ दूसरा चेतन, एक संसार दूसरा आत्मा । इन दोनों में आत्मा जो है वह सत्य है । दूसरा जो जड़ संसार प्रतीत होता है वह असत्य है, भ्रम है, माया है । इसको हम प्रथम खण्ड में विस्तार से सिद्ध कर चुके हैं । यह संसार अवस्तु होकर भी संसारी जीवों को वस्तु रूप से प्रतीत होता है । अतः इसी असार संसार को माया अथवा भ्रम कहते हैं ; अर्थात् संसार, माया अथवा भ्रम ये तीनों पर्य्यायवाचक शब्द हैं । इन तीनों का अर्थ एक है । अतएव यदि ईश्वर माया को वश में किये है ; तो वह संसार को वशमें किये है । यदि वह संसार को

वश में किये है तो वह पञ्चतत्वों को वश में किये है । यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है । संसार में जो कुछ बना है, इन्हीं पञ्च तत्वों से बना है । यह सारा संसार पञ्च तत्व मय है; यह सर्व संसार केवल पञ्च तत्वों का एक सम्मिलित रूप है; दूसरा कुछ नहीं। इनमें से एक २ तत्व को एक २ ईश्वर के वश में है । और इस प्रकार से पञ्च तत्व मय संसार पञ्चदेवों के वश में सिद्ध होजाता है । अतएव ईश्वर पांच से न्यून वा अधिक नहीं हो सकता ।

जो लोग संसार को भ्रम अथवा माया नहीं मानते उन्हें भी पञ्च तत्वों को संसार का कारण मानना पड़ेगा । वे भी यह मानेंगे कि संसार में जो कुछ बना है वह पञ्चतत्वों ही से बना है । और उसका नियामक, नियन्ता, प्रेरक अथवा स्वामी कोई है । कोई ऐसा अवश्य है जो इस पञ्चतत्वमय संसार को नियम पूर्वक चला रहा है । कोई ऐसा अवश्य है जो इन पञ्चतत्वों को वश में किये है, और इनका स्वामी है । वह जो हो, परन्तु उसीको ईश्वर को न मानने वाले प्रकृति, स्वभाव, कुदरत वा नेचर कहते हैं । और उसीको ईश्वर के मानने वाले ईश्वर, खुदा वा गाड कहते हैं । यह निर्विवाद है, इसमें किसीको कुछ भी सन्देह नहीं । अतः जो ईश्वर मानते हैं उन्हें यह मानना पड़ेगा कि जो इस संसार को वश में किये है उसका नाम ईश्वर है, और चूँकि संसार में ५ पांच दर्जे हैं, पांच तत्व हैं, अतः उसके माष्टर या

उसके स्वामी भी पांच हैं । चूँकि संसार पञ्चतत्वमय है; इसलिये ईश्वर भी पञ्चदेव मय है । वस्तुवें भी पांच हैं स्वामी भी पांच है । तत्व पांच है, ईश्वर भी पांच हैं । इससे न्यून वा अधिक नहीं हो सकता ।

प्र०—क्या एकही ईश्वर से संसार का काम नहीं चल सकता ?

उ०—हम भी पूछते हैं कि क्या एक ही तत्व से संसार का काम नहीं चल सकता ? इन पांच तत्वों की क्या आवश्यकता ? आप कहेंगे कि नहीं बिना पांच तत्वों के काम नहीं चल सकता । तो हम भी कहते हैं कि बिना पांच ईश्वरों के काम नहीं चल सकता । .

प्र०—हम कहते हैं कि यदि इन पांचो तत्वों का एकही स्वामी वा नियामक हो तो कौनसी हानि है ?

उ०—हानि तो बहुत है । जैसे सूर्य्य यदि गर्मी और प्रकाश का स्वामी है तो वह चन्द्रमा का काम नहीं दे सकता । उसी प्रकार चन्द्रमा गर्भप्रकाश का काम नहीं देसकता । गर्मी और अग्नि का स्वामी सूर्य्य तथा शीतलता का स्वामी चन्द्र है । ये दोनों परस्पर विरुद्ध हैं; इसमें का एक दूसरे का काम नहीं दे सकता । अतः जिसका वह काम दे सकता है उसी का वह स्वामी है वही उसके वश में है दूसरा नहीं । देखिये ! यदि आज अग्नि का स्वामी सूर्य्य न रहे तो कहीं अग्नि न रह जाय । सब पदार्थ इतने नम हो जायँगे कि कहीं अग्नि प्रगट न हो सकेगा।

जब कभी बरसात में दो रोज़ के लिये भी सूरज बदली से छिप जाता है तो दियासलाई लोग रगड़ २ कर रहजाते हैं परन्तु नहीं वलती । तो भला जिस रोज़ सूर्य्य एकदम संसार में न रहे; तो क्या कहीं अग्नि प्रगट हो सकता है ? कभी नहीं । इन सब बातों के कहने का असली मतलब यह है कि एक ईश्वर दूसरे का स्वामी नहीं हो सकता । अतःएकही ईश्वर पांचो तत्वों का नियामक नहीं हो सकता । इसीसे वेदों में भी ईश्वर को एक नहीं माना है:—

तमीश्वराणां परमं महेश्वरम् ।
तन्देवतानां परमञ्च दैवतम् ॥
पतिम्पतीनां परमम्परस्तात् ।
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥

अर्थ—जो ईश्वरों में भी सबसे बड़ा महेश्वर है, जो देवतावों में सबसे बड़ा देवता है, जो मालिकों में सबसे बड़ा मालिक है, उस भुवन के स्वामी महादेव महेश्वर को हम जानते हैं । इसमें " ईश्वराणाम् " यह पद बहुवचन है अतः ईश्वर वेद से भी एक नहीं सिद्ध होता । इसलिये वह पांच है यह सिद्ध हुवा । हम पूँछते हैं कि यदि वह पांच हो तो आप लोगोंकी क्या हानि है ?

प्र० कर्त्ता—हमारी हानि कुछ नहीं । परन्तु जैसे दो चार मनुष्य जहां रहते हैं वहां कभी २ झगड़ा झञ्झट भी हुआ करता है । उसी प्रकार यदि हम ईश्वर को पाँच मान लें तो उनमें आपस में झगड़ा झंझट का डर है वा नहीं ?

उ०—हम इसके प्रथम ही कह चुके हैं कि ईश्वर उसे कहते हैं जो माया को वश में किये हो । अतएव माया जिसके वश में है उसका किसी के साथ झगड़ा झंझट होना असम्भव है । झगड़ा होता है भूल से, माया से, अज्ञानता से । मनुष्यों में जो झगडा होता है वह इसलिये कि वे माया के वश में हैं, उनके वश में माया नहीं । वे अज्ञानता के वश में हैं उनके वश मे अज्ञानता नहीं । ये सब ईश्वर अपने २ अधिकार पर स्थित रहते हैं इनमें कभी झगडा झंझट नहीं होता । आपने कभी सूर्य्य चन्द्रमा को लड़ते हुवे देखा है ? आपने कभी देखा है कि सूर्य्य चन्द्रमा को हटा कर, उनसे लडकर, रात्रि को अपना अधिकार जमा लिये हो ? कभी नहीं । ये सब अपने २ अधिकार पर स्थित हैं । इनमें कभी झगडा नहीं होता ॥

प्र०—आप के इन पांचो ईश्वरों में एक ईश्वर का नाम स्त्रीलिङ्ग विदित होता है, यह क्यों ?

उ०—ऐसा होना तो आवश्यक था क्योंकि इन पांचो तत्वों में भी एक तत्वों स्त्रीलिङ्ग है । उसका नाम है पृथ्वी । इसके सिवाय इन तत्वों में दूसरा कोई तत्व स्त्रीलिङ्ग नहीं उसी प्रकार इन ईश्वरों में भी एक ही शब्द स्त्रीलिङ्ग है । इसी से सिद्ध होता है कि इन ईश्वरों का सम्बन्ध पञ्चतत्वों के साथ है । और चूँकि तत्व पाँच हैं इसलिये ईश्वर भी पांच हैं यह अखंड सिद्ध होता है ॥

इति श्री शिवकुमारशास्त्रिकृते वेदान्तसिद्धान्ते नवमोऽध्यायः ।

॥ ईश्वर को पांच होने की आवश्यकता ॥

आप जानते हैं कि मिलाने की शक्ति आत्मा में होती है। देखिये जिस समय कोई मर जाता है, जब शरीर में से चेतन आत्मा निकल जाता है; तो वह शरीर फूलने लगता है। इसका क्या कारण? इसका कारण यह है कि उसके हर एक परमाणु आपस में एक दूसरे से अलग होने लगते हैं। एक उस शरीराभिमानी चेतन आत्मा के निकल जाने से उस शरीर की संगठन शक्ति नष्ट होजाती है। उसमें आपस में मिले रहने की शक्ति नहीं रह जाती। यहां तककि शरीर अत्यन्त फूलकर फट जाता और मिट्टी में मिल जाता है। इसीसे जब किसी रोगी का शरीर फूल जाता है तो लोग कहते हैं कि यह नहीं जियेगा। क्योंकि जो शरीर कुछ दिन हुवा कि गंठा हुवा था वह आज फूल गया तो मालूम होता है कि इसमें से जीवनी शक्ति निकल गई वा कम होगई। इस शरीर का अभिमानी आत्मा अब इसे छोड़ना चाहता है।

प्राण और शरीर का संयोग जीवात्मा और शरीर का मेल तथा शरीर के हर एक अंग हर एक परमाणु तभी तक मिले रहते हैं जब तक यह शरीराभिमानी चेतन आत्मा शरीर में बर्त्तमान रहता है। जिस दिन यह निकल जाता है उसी रोज से शरीर के हर एक अंगों तथा हर एक परमाणुवों में विरोध उत्पन्न हो जाता है। कहने का तात्पर्य्य यह है कि विना एक शरीरा-

भिमानी चेतन आत्मा के प्रत्येक परमाणु आपस में विरोध करके नाश को प्राप्त होते हैं।

अब देखिये जल के परमाणु आकाश में विखरे हुवे थे। उनमें एक जलाभिमानी ईश्वर के व्यापक होने से इनमें मेल उत्पन्न हुई, एक स्वाभाविक आकर्षण शक्ति उत्पन्न हुई, जिससे ज़ल परमाणु आपस में मिलने लगे । इसी मेल, इसी आकर्षण शक्ति का फल है कि, इन जल के परमाणुवों ने इतना बड़ा समुद्र बना लिया। यह समुद्र इसी मेल का फल है । नदियां कहीं से क्यों न निकलें परन्तु वहां से जिधर को समुद्र नज़दीक पड़ेगा उसी तरफ को नदियों की गति होगी, हिन्दुस्तान के नक्शे को देखिये संयुक्तप्रान्त और बंगाल की सब नदियां बंगाल की खाढ़ी में गिरी हैं। वह कहीं से क्यों न निकली हों परन्तु उनका स्वाभाविक प्रवाह बंगाल खाढ़ी की ओर है। परन्तु यही पंजाब की प्रत्येक नदियों का प्रवाह अरब समुद्र की ओर है। इसका क्या कारण? क्योंकि वहां से वही समुद्र (Arabian see) निकट पड़ता है। जिधर से जो समुद्र निकट पड़ेगा नदियों की गति, नदियों का प्रवाह, उसी ओर होगा । नदियां तो नदियां हैं यदि आप नदी के रहनेवाले एक मगर के बच्चे को ले लीजिये और उससे कुछ दूर विना उसको दिखाये एक कठेरे में पानी भर कर रख दीजिये फिर उस मगर के बच्चे को छोड़ दीजिये तब तमाशा देखिये! उस मगर के बच्चे की स्वाभाविक

गति उसी पानी की तरफ़ होगी। उस पनी के कठरे को जिधर घुमा कर रखियेगा बच्चा उसी ओर को चलेगा। बात क्या है? पानी में उसे खींचने की शक्ति है। नदियों के प्रवाह में भी यही कारण है। क्योंकि जलराशि नदियो को अपनी ओर खींच रहा है। इसीसे इन नदियों को ज़राभी आराम करने की फ़ुर्सत नहीं। बराबर बिना किसी रोक टोक के वही चली जाती हैं। कहां पर? समुद्र में, जो उनको खींच रहा है उसमें। यह खिंचाव तब तक है जब तक उसमें एक जलाभिमानी चेतन आत्मा है। जिसदिन यह चेतन उसमें से निकल जायगा यह खिंचाव मिट जायगी, इस मेल की रस्सी टूट जायगी उसी रोज़ इसका प्रलय जानों। अब इनको वश में करने वाला, इनमें प्रेम उत्पन्न करने वाला जो चेतन आत्मा है उसका नाम है ईश्वर। ईश्वर प्रेम रूप है, ईश्वर प्रेममय है, ईश्वर प्रेम हैGod is loveइसीसे ईश्वरभक्त प्रेम रूप होता है, प्रेम मय होता है। यही कारण है कि जिन जातियों के वा जिन देशों के बनने के दिन आते हैं उनमें प्रेम उत्पन्न होता हैं। विरोध बिगड़ने का, नाशका, प्रलय का कारण है। भारत-वर्ष के अवनति का मुख्य कारण यही विरोध है।

अब देखिये इन परमाणुवों में पांच जाति के परमाणु हैं। इनमें प्रत्येक जाति के परमाणुवों का अपने २ जाति के साथ मेल है। जल के परमाणुवों का जल के साथ, पृथ्वी के परमाणुवों का पृथ्वी के साथ और वायु के परमाणुवों का वायु के साथ

मेल है । इसी प्रकार से हर एक परमाणुवों का अपने २ जाति के परमाणुवों के साथ मेल है । अब, यदि इन पांचो परमाणुवों का नियन्ता, इनको वश में करनेवाला और इनमें व्यापक एक ही ईश्वर होता, तो ये सब बजाय इसके कि, वे अपने ही जाति के परमाणुवों से मिलते, दूसरों से भी मिलने लग जाते । क्योंकि सब में एक ही आत्मा के व्यापक होने से उनमें सब के साथ अर्थात सब जाति के परमाणुवों के साथ एक आत्म-भाव होना । परन्तु ऐसा नहीं है । ऐसा यदि आज हो, अर्थात जल के परमाणु आकाश के साथ और पृथ्वी के परमाणु वायु के साथ या और किसी अपने से अन्य दूसरे परमाणुवों के साथ मिलने लग जायँ तो आज ही संसार का प्रलय हो जाय । अतः इन पञ्च परमाणुवों में व्यापक होकर इनको वश में करने वाला, इनमें प्रेम उत्पन्न करने वाला, इनको मिलाने वाला एक ईश्वर नहीं हो सकता । बिना पाँच के सृष्टि की स्थिति नहीं हो सकती । इसलिये "ईश्वर को पाँच होने की आवश्यकता है," यह सिद्ध हुवा

प्र०—क्या ईश्वर सर्वदा पांच ही रहते हैं ? एक कभी नहीं होते?

उ०—नहीं, ईश्वर सर्वदा पांच नहीं रहते, किन्तु महाप्रलय में एक महादेव ही रहजाते हैं * जो आकाश तत्व के स्वामी हैं । अतः सब परमाणुवों का आकाश के साथ आत्मभाव उत्पन्न होता है, सब आकाश में मिलने लगते हैं, सब आकाश में लीन

* इसे आगे चल कर सिद्ध करेंगे ।

होने लगते हैं, सबका अपने जातीय परमाणुवों का साथ मिलना छूट जाता है, यहां तक की सब परमाणुओं का आकाश के साथ आत्मभाव उत्पन्न होने से सब आकाश ही के स्वरूप को प्राप्त होते हैं। क्योंकि जो जिसके साथ आत्मभाव करेगा, जो जिसके साथ प्रेम करेगा, वह वही हो जायगा। वह उसी के रूप को प्राप्त होगा। यह वेदान्त का सिद्धान्त है। कहने का तात्पर्य्य यह है कि ऐसे समय में सारे परमाणु महादेव के आकाश तत्व में लीन हो जाते हैं। उस समय एक तत्व रहता है, एक ईश्वर रहता है और द्वैत का मिटाने वाला एक महादेव रहता है। इस समय का नाम महा प्रलय है। इस महा प्रलय के कर्त्ता महादेव हैं। इसके अनन्तर महादेव भी अपने आकाश तत्व के साथ अपने ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त होते हैं। उस समय केवल एक अक्षर और शुद्ध ब्रह्म रह जाता है। इस समय का एक वार चिन्तन करिये। आँख बन्द करके मान लीजिये, कल्पना कीजिये कि, सारे संसार का प्रलय हो गया; एक वार चित्त के वृत्तियों को संसार से हटा लीजिये और ॐ; ॐ इस पद को उच्चारण करते हुवे इसी प्रलय काल का ध्यान कीजिये, इसी में चित्त को एकाग्र कीजिये, देखिये! आप भी उसी ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त होते हैं। यही योग साधन है।

इति श्री शिवकुमारशास्त्रिकृते वेदान्तसिद्धान्ते दशमोऽध्यायः

॥ एक ईश्वर के होने से हानि ॥

दो वस्तुवें हैं—एक द्वैत दूसरा अद्वैत। द्वैत उसे कहते हैं जिसमें

दो, चार, हज़ार और अनेकों की कल्पना हो, जिसमें अनेकों भेद प्रभेद हों । परन्तु यह वास्तविक नहीं होता, यह केवल कल्पित मात्र होता है । जैसे खेल में किसीको चोर, किसीको राजा और किसीको कोतवाल मानलेते हैं । लेकिन वास्तव में सभी लड़के हैं ; कोई चोर, साहु और कोतवाल नहीं । परन्तु खेल में यदि इस बात को मानें कि " कोई चोर साहु और कोतवाल नहीं " तो खेल बिगड़ जाता है । इसी को संसार कहते हैं इस की भी ऐसी ही स्थिति है । इसीका नाम द्वैत भाव सिद्ध होता है । अद्वैत कहते हैं ब्रह्म को जिसमें किसी प्रकार की कल्पना नहीं । इसी का नाम है प्रलय । प्रत्यक्ष ही देखिये यदि आप थोड़ी देर के लिये अपनी सब कल्पनावों को दूर करके निर्विकल्प अवस्था में स्थित् हो जाइये ; तो यह सारी सृष्टि, यह सारा संसार गायब हो जायगा । केवल एक आप ही अद्वैत रूप में रह जायँगे । उस समय आप देखेंगे कि हम साक्षात परब्रह्म हैं । क्योंकि आप वास्तव में अद्वैत ब्रह्म हैं यह जीव पदवी आपको द्वैत में पड़ने से मिली है । परन्तु यह द्वैत ही संसार का कारण है ।

अब देखिये यदि एक ही ईश्वर हो । सब परमाणुवों में एक अद्वैव भाव उत्पन्न हो । तो सारे संसार का प्रलय हो जाय। एक ईश्वर के होने से यही हानि है । क्योंकि, जब एक ही ईश्वर सब का नियन्त हो जायगा, जब एक ही ईश्वर सबमें व्यापक हो

जायगा, तो हर एक जाति के परमाणु एक दूसरे से मिलने लगेंगे और सृष्टि का प्रलय हो जायगा। सृष्टि तबतक है जबतक परमाणुवों का अपने जाति के परमाणुवों के साथ मेल है । और मेल चेतन की व्यापकता से है इसे हम पूर्व में सिद्ध कर चुके हैं। अतः यदि उनमें एक ही अभिन्न भाव वाला चेतन पांचो में व्यापक हो तो उपरोक्त जातीय प्रेम नष्ट हो जाय। और जहां जातीय प्रेम नष्ट हुवा वहां प्रलय जानिये। अतः एक ईश्वर के होने से बड़ी भारी हानि है ॥

इस जातीय प्रेम से तो यह भी विदित होता है कि, ब्राह्मण ब्राह्मण के साथ और क्षत्रिय क्षत्रिय के साथ प्रेम करें, क्या आपका यही मतलब है ?

उ०—हमारे कहने का मतलब यह नहीं है। हम इस प्रकार के जाति भेद को "जातिभेद" नहीं मानते। हमारी बनाई हुई "वर्ण भेद पर अद्‌भुत विचार" नाम की पुस्तक देखिये। आपको विदित होगा कि इस भेद की कुछ आवश्यकता नहीं। यह जाति जाति नहीं है। जैसे—धातुवों में लोहा, सोना, चाँदी और तामा अनेक जाति के धातु हैं। इनको यदि आप मिलाकर रख दीजिये तो उसको लोग पहचान कर फिर अलग २ कर सकते हैं। परन्तु ब्राह्मणों क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों को यदि एकही जगह बैठाल दीजिये; तो कोई बिना बतलाये उनको पहचान नहीं सकता। अतः यह

"जाति," जाति नहीं विदित होती जाति भेद देश भेद से होता है। यदि आप एक हिन्दुस्तानी और एक युपरोपियन को बैठाल दीजिये तो पहचानने के समय झट पहचान में आजायगा कि यह युरोपियन है यह हिन्दुस्तानी। अर्थात हम हिन्दू मात्रको वा हिन्दुस्तानी (भारतीय) मात्र को एक जाति का समझते हैं। इनका आपस का प्रेम जातिय प्रेम है। इसीसे कल्याण है, इसी जातीय प्रेम की भारतवर्ष में आवश्यकता है। इस विषय में और बहुतसी बातें कहनी थी परन्तु उसको यहां नहीं कह सकते यदि इसपर विशेष रूप से जानना होतो हमारी बनाई हुई जातीय प्रेम नाम की पुस्तक देखिये।

(प्र०) तो क्या औरों के साथ प्रेम न करे ?

(उ०) ऐसा नहीं। जल परमाणुवों का अपने जाति से विशेष प्रेम है। क्योंकि अपने जाति के परमाणु अपने जाति के प्रेम के विशष अधिकारी हैं। परन्तु देखिये यदि पृथ्वी वृष्टि के समय जल बिन्दुवों को अपनी ओर न खींचे तो वर्षा ही न हो। फिर वह जल जो ऊपर से गिरा है वा ये सब नदियां व समुद्र यदि पृथ्वी न हो तो किस पर ठहर सकते हैं। यदि इनका पृथ्वी के साथ प्रेम न हो, यदि इनका पृथ्वी से विरोध हो तो ये रह कहां सकते हैं। इसी प्रकार हरएक तत्वों में पांचो तत्व हैं और पांचो का आपस में मेल है। लेकिन उनमें जातीय प्रेम मुख्य है। वैसे तो संसार में केवल ६ ही तत्व हैं। पांच तो जड़तत्व हैं, ६ ठवा

चेतन तत्व है । जिसमें कीट से लेकर ब्रह्मतक शामिल हैं । अतः चेतन मात्र में प्रेम होना जातीय प्रेम है। मगर जितने हीं आवांतर भेद हैं जितनों के साथ हमारा विशेष सम्बन्ध है उनके साथ विशेष प्रेम रखना ज़ातीय प्रेम है । जैसे छोटे २ नाले छोटी २ नदियों में मिल जाते हैं। फिर वे नदियां बड़ी नदियों में और बड़ी २ नदियां समुद्र में मिल जाती हैं । इसीप्रकार के प्रेम को जातीय प्रेम कहते हैं । इस वसूल को इस समय भारतवासी नहीं समझते । आजकल भारतवासियों की यह गति है कि दूर देश से आये हुवों से अधिक प्रेम करते हैं, उनकी अधिक प्रतिष्ठा करते हैं । परन्तु अपने पड़ोसी से लड़ते हैं । उनकी प्रतिष्ठा उनके दृष्टि में कुछ नहीं । यही लक्षण सिद्ध करता है कि भारत में जातीय प्रेम नहीं । प्रथम भारतवासियों को चाहिये कि हम आपस में एक हो जायँ उसके बाद हमें दूसरे देशवालों के साथ भी व्यवहार कर सकते हैं । तभी दूसरे देशवाले भी हमारी प्रतिष्ठा करेंगे । नहीं तो सब व्यर्थ है । प्रेम तो मनुष्य मात्र से क्यों चेतन मात्र से होना चाहिये । ज्ञान किसीसे द्वेष करने को नहीं कहता । देखिये पञ्चतत्व और चेतन आत्मा ये सब किस प्रकार आपस में मिले हैं । परन्तु आपके देश के लोग आपके विशेष प्रेम के अधिकारी हैं । इस सूक्ष्मभाव पर ज़रा विचार कीजिये । यहां विस्तार भय से विशेष रूप में नहीं लिख सकते ।

(प्र०) आपने मिसाल देकर के कहा है कि यदि खेल

में कोई इस बातको माने कि "कोई चोर साहू वा कोतवाल नहीं" तो खेल बिगड़ जाय तब इस आपके अद्वैत ज्ञान से क्या फ़ायदा मानलिया कि यह भेदभाव कल्पित है। परन्तु इसको कल्पित मानने से लाभ क्या है?

उ०—वेदान्त यह बतलाता है कि यदि आप खेल में खेल रहे हैं तो खेलिये परन्तु यह जान लीजिये कि हम वास्तव में चोर नहीं। जिसमें दाव आने पर आप भी कोतवाल बन जाइये, आप भी साहु बन जाइये। ऐसा नहो कि जो कोतवाल वा साहु बना है अन्याय से आपको दांव वा अवसर नदे, ऐसा नहो कि आपको यह ज्ञान हो जाय कि हम सदाही के चोर हैं, हमको चोरही रहना है। हम साहु वा कोतवाल का क्या सामना कर सकते हैं। कितना हूं तो कोतवाल कोतवालहीं हैं। और हम कितनाहू तो चोरही न? इसी अज्ञानता को मिटाने के लिये व्यवहारिक वेदान्त वा अमली वेदान्त है। यदि आपके साथ ये कोतवाल और साहु अन्याय के साथ वर्त्ताव करें तो आप सहने मत लग जाइये। किन्तु आप यह जानिये कि यह खेल, ये कोतवाल ये साहु हमारे बनाये हुवे हैं। इनको हम जब चाहें तब इस पद से उतार सकते हैं। खेल न्याय के साथ खेलने के लिये है। वेदान्त सब के आत्माधिकार को बतलाता है। वेदान्त बतलाता है कि आपका वास्तविक स्वत्व क्या है। आप अपने वास्तविक रूप को जानकर जो चाहिये सो खेलिये। तभी आपका खेल आदर्श खेल होगा।

तभी आप खेल का मज़ा उठाइयेगा । तभी खेल में आनन्द है । ऐसा न हो कि चोर बने तो अपने को चोर ही मान बैठें, यह जानलें कि हम सदा ही के चोर हैं। ऐसा खेल, खेल नहीं है। ऐसा खेल बन्धन है भारतवासी तो इस संसार मे खेल रूपमें नहीं है किन्तु बन्धन रूप में है । भारत वासियों के लिये यह खेल, खेल रूप में नहीं है किन्तु दुःख और बन्धन है। क्योंकि यहां व्यवहारिक वेदान्त, अमली वेदान्त का प्रचार नहीं है । वेदान्तियों के लिये यह संसार उनका बनाया हुवा एक खेल है । परन्तु जो व्यवहारिक वेदान्त से अनभिज्ञ हैं उनके लिये यह दुःख है। भारतवासियो ! इस मिसाल को एक बार विचारो, अपने अधिकार का चिन्तन करो, अपने बन्धन को तोड़ो, अपने स्वरूप में जागो !

इति श्रीशिवकुमारशास्त्रिकृते वेदान्तसिद्धान्ते एकादशोऽध्यायः

विष्णु का तत्व ।

प्र०—अच्छा तो विष्णु जो आपके कथनानुसार एक ईश्वर हैं। उनका किस तत्व के साथ घनिष्ठ और, विशेष सम्बन्ध है ?

उ०—विष्णु जल तत्व को वश में किये हैं । विष्णु का घनिष्ठ सम्बन्ध जल तत्व के साथ है । इसका प्रमाण यह है कि पुराणों में सिवाय विष्णु के और किसी ईश्वर को समुद्रशायी (समुद्र में सोनेवाला वा समुद्र में रहनेवाला) नहीं कहा है।

केवल विष्णु का ही स्थान जलराशि समुद्र में योगियों ने माना है। अतः जल तत्व को वश में करने वाले विष्णु हैं। बहुत से लोग पुराणों को नहीं मानते उनके लिये निम्नलिखित मनुस्मृति का श्लोक प्रमाण में देते हैं:—

आपो नारा इति प्रोक्ता अपोवै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं, तेन नारायणःस्मृतः॥

मनु० अ० १ श्लो १०

अर्थ—नर अर्थात ईश्वर से जल उत्पन्न हुवा है; इसलिये जल का नाम नारा है। इसमें पूर्व काल से विष्णु का निवास है। अतः विष्णु को नारायण कहते हैं। " (नारा = जल + अयन = घर = नारायण) " इस प्रकार से नाराणय शब्द सिद्ध होता है। जिसका जल में घर हो उसे नारायण कहते हैं। नारायण विष्णु का नाम है अतः विष्णु जल के स्वामी हैं। क्योंकि हम इसे सिद्ध कर चुके हैं कि जो जिसमें रहेगा वही चेतन तत्व उसे वश में कर सकेगा, दूसरा नहीं।

विष्णु जलही तत्व को वश में किये है यह सन्देह रहित है। देखिये ! वेद में भी कहा है:—

भुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे, दधेह
गर्भं ऋत्वियं यतो जातः प्रजापतिः।

यजु० अ० २३। म० ६३

अर्थ—प्रथम सृष्टि काल में स्वयम्भू ईश्वर विष्णु भगवान

जिनका भवन सुन्दर जलस्थान है, महान समुद्र के भीतर शयन किए। उन्हीं के नाभि कमल से प्रजापति (ब्रह्मा) उत्पन्न हुए॥

क्या अब भी कुछ सन्देह है कि विष्णु जल तत्व के स्वामी नहीं हैं। इन सब प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि विष्णु जलशायी हैं वा जिनको जलशायी कहा है उसी को हमने यहांपर विष्णु कहा है। और वह जलतत्व को वश में करनेवाला ईश्वर है।

विष्णु का रंग नीला है। विष्णु को सभी नीले रंग का मानते आये हैं। अब देखिये! समुद्र का रंग भी नीला है। समुद्र नीले ही रंग का दृष्टिगोचर होता है आजकल नकशा खींचनेवाले भी समुद्र का रंग नीला रखते हैं। ऊपर आकाश में भी जलपरमाणु विशेष फैले हुवे हैं। इसी से आकाश का रंग भी नीला विदित होता है। थोड़ा सा जल श्वेत ही दिखलाई पड़ता है। परन्तु वास्तव में जलतत्व का रंग भी नीला है। इस विषय में यहां कुछ और विशेष नहीं लिख सकते। अवकाश मिलने पर फिर लिखेंगे। लेकिन समुद्र का रंग निर्विवाद नीला है। अतः विष्णु के साथ जलतत्व का सम्बन्ध सिद्ध होता है॥

* पीत वस्त्र *

विष्णु को पीत वस्त्र धारी माना गया है। अर्थात विष्णु के ऊपर उनके शरीर के कुछ हिस्सों मे एक पीला वस्त्र लिपटा हुवा है। वह क्या है? वह पृथ्वी है। पृथ्वी ऊपर हैं और समुद्र

नीचे इसे सभी मानते हैं । समुद्र की अपेक्षा पृथ्वी बहुत कम है । समुद्र के कुछ ही भागों में पृथ्वी है । पृथ्वी का रंग पीला है । उसी से जिस मनुष्य का स्वभाव मिट्टी खाने का पड़ जाता है वे बिल्कुल पीले हो जाते हैं । और बहुत जल्द मिट्टी में मिल जाते हैं । प्राचीन शास्त्रों में भी पृथ्वी का रंग पीला कहा गया है । यह पृथ्वी समुद्र के कुछ भागों में केवल ऊपर ही ऊपर वर्त्तमान है । क्योंकि प्रत्येक स्थलों में नीचे जल वर्त्तमान है इसी से खोदने पर जल निकल आता है । अतः यह पीत वस्त्र भी समुद्र के ऊपर दृष्टिगोचर होता है । विष्णु के पीत वस्त्र से भी विष्णु का सम्बन्ध जल के साथ सिद्ध होता है ।

प्र०—हम को एक बात अभी समझ में नहीं आई । वह बात यह है " कि यह विष्णु इत्यादि ईश्वरों का जो समुद्र और जलादि विराट शरीर आप वर्णन कर रहे हैं जिसमें पृथ्वी को आपने वस्त्र सिद्ध किया है, " यही एक विराट ही शरीर उसका है वा इस से सुक्ष्म शरीर भी कोई है ? नीले रंग का पीत वस्त्र पहिने मनुष्यों के समान उसका कोई छोटा शरीर इस विराट के सिवाय है वा नहीं ?

उ०—नहीं, विराट शरीर के सिवाय इन ईश्वरों का सूक्ष्म शरीर भी होता है । परन्तु जिसका विराट शरीर जिस प्रकार का होता है, उस के शरीर का रंग भी उसके विराट के समान होता है । वह वैसा ही कपड़ा पहिनना पसन्द करता और

उसकी स्वाभाविकी गति भी वैसी ही होती है। परन्तु अभी इस बात को हम यहां सप्रमाण सिद्ध नहीं कर सकते । प्रथम सब का विराट शरीर वर्णन करके फिर इस विषय को हाथ में लेंगे । अभी इसको यहीं रहने दीजिये ।

इति श्रीशिवकुमार शास्त्रिकृते वेदान्तसिद्धान्ते द्वादशोऽध्यायः

॥ विष्णु के तत्व की खोज ॥

लोग कहते हैं कि विष्णु के चरणों से गंगा की उत्पत्ति हुई है। प्रायः जो जैसा होना है उससे उत्पन्न भी वैसी ही वस्तु हुवा करती हैं। गंगा एक जलमय की नदी है यदि उसकी उत्पत्ति विष्णु से हुई है तो विष्णु को भी जलमय होना चाहिये। अतः गंगा की उत्पत्ति से भी विष्णु जलतत्व के स्वामी सिद्ध होते हैं। देखिये विष्णु जो समुद्ररूप हैं उनसे जल भाप रूप में उठकर आकाश में बादल रूप को प्राप्त होता और फिर वही हिमालय पर गिरकर बरफ वा हिमरूप को प्राप्त होता है। वही वर्फ गल २ कर जो गंगोत्तरी द्वारा गिरता है उसी को गंगा कहते हैं। अतः गंगा की उत्पत्ति समुद्र रूपी विष्णु से है। समुद्र जल का स्वामी है और विष्णु उसके ईश्वर हैं।

विष्णु के मच्छ, कच्छ और बाराह इत्यादि जो अवतार हैं वे भी विशेष करके जल से समवन्ध रखते हैं। मछली तो समुद्र में

रहती ही है इसमें तो कुछ सन्देह ही नहीं। कछुवे का भी अवतार भगवान ने समुद्र में ही लिया था। आप कहेंगे कि वाराह का समुद्र के साथ कैसा सम्बन्ध ? क्या आप नहीं जानते; वाराह अवतार भी समुद्र में हि प्रवेश करने के लिये हुआ था और भगवान का धन्वन्तरि अवतार भी समुद्र सेही निकला था । रामावतार में रामचन्द्र समुद्र के ईश्वर होने के कारण समुद्र को अपने वश में करलिये थे यहां तक कि जो पत्थर उस पर रखदिया वह तरने लगा; उसको समुद्र डुबा न सका। इस प्रकार से समुद्र को वश में करने वाला कौन था ? विष्णु का अवतार रामचन्द्र। और सब जाने दीजिये श्रीकृष्ण-चन्द्र भी आखिरकार अपना नगर समुद्र में ही बसाये। समुद्र के बीच किला बनवाकर अन्त समय तक सदा समुद्र में रहे। क्या इन सब प्रबल प्रमाणों के होते हुवे भी कोई कह सकता है कि बिष्णु का किसी दूसरे तत्व के साथ सम्बन्ध है ? कभी नहीं।

विष्णु के शंख, और पद्मादि भी जल के साथ सम्बन्ध रखते हैं देखिये शंख समुद्र में ही पाया जाता है और पद्म अर्थात् कमल भी जल से उत्पन्न होता है। इन सब प्रमाणों से भी सिद्ध होता है कि बिष्णु जल तत्व के स्वामी हैं। बांकी जो चक्र और गदादि हैं वे आयुध हैं। परन्तु शंख और पद्मादि जल तत्व के चिन्ह हैं। ये सिद्ध करते हैं कि इनका धारण करनेवाला जल तत्व से सम्बन्ध रखता है।

यह पानीय शब्द "पा" धातु से निकला है। "पा" मानी जो पालन करे। इसीसे जल तत्व वा शीतलता में पालन शक्ति विशेष करके है। एतदर्थ विष्णु भी पालन कर्त्ता हैं। जलको यदि आग पर चढा दिया जाय तो भाप बनकर उड़जाता है। इसी को संसार में जल का नाश कहेंगे; अर्थात् अग्नि वा गर्मी से संसार के हरएक वस्तुओं का नाश होना है। फिर उसी भाप के ऊपर यदि किसी प्रकार से शीतलता पहुँचायी जाय (जैसा कि अर्क खींचते समय किया जाता है) तो यह भाप फिर जल रूप को प्राप्त होजाता है इससे यह सिद्ध है कि शीतलता वा जल में पोषण-शक्ति विशेष है।

जल वा रस में विशेष करके मिलाने की शक्ति है और अग्नि वा निरसता में अलग करने की। जल वा शीतलता से प्रेम उत्पन्न होता है, वा यों कहिये कि जहां मेल वा प्रेम होता है वहां शीतलता वा जल अवश्य होता है। (इसीसे प्रह्लाद अग्नि में नहीं जले थे; क्योंकि रामप्रेम के कारण उनमें शीतलता विशेष थी। उनके शरीर में इतनी शीतलता थी कि उनके संयोग से अग्नि भी शीतल हो गया उस समय उन्होंने यह कहा था कि:—

"पश्य तात मम गात्रसंगमात् पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना"

एक तो प्रेम में स्वयं शीतलता है। दूसरे जलतत्वमय विष्णु का ध्यान करने से उनमें इतनी शीतलता आगई थी कि अग्नि क्या उस समय यदि प्रचण्ड बड़वानल वा प्रलयाग्नि भी आती

तो उनके संयोग से शीतल हो जाती। ऐसी स्वयं शीतल होता है अतः जो उसके पास आता वह भी शीतल हो जाता है।

ठीक इसी प्रकार अग्नि या गर्मी से बैर, फूट, द्वेष और अनेक प्रकार के विरोध संसार में फैल जाते हैं। दृष्टान्त के लिये बालू लीजिये यदि आप उसे मिलाकर पिण्ड बाँधना चाहें तो उसमें जल डालकर बांध सकते हैं क्योंकि जल में मिलाने की शक्ति है। जल डालने से वह गीला होकर पिण्डाकार बँध जायगा। फिर यदि आप उसे अलग करना चाहें तो धूप में रखकर उसमें विशेष गर्मी पहुँचाइए। गर्मी पहुँचने से उसमें विरसता आवेगी, विरसता आने से वह सूख जायगा और जब जल का अंश बिल्कुल निकल जायगा तो वह फूट कर फिर अलग २ हो जायगा। इससे यह सिद्ध होता है कि अलग करने तथा विरोध फैलाने की शक्ति अग्नि में है।

संसार की स्थिति तब तक है जबतक इसके परमाणु आपस में मिले हैं। इनसे मेल रखना ही संसार का पालन है। और यह पालन शक्ति या मेल जल में है। इसीसे इसको नियम में रखने वाले, इसमें व्यापक और इसके स्वामी, विष्णु भी—पालन कर्त्ता कहलाते हैं।

यदि विष्णु जल तत्व के स्वामी न होते तो वे पालन कर्त्ता भी न होते। विष्णु का पालन कर्त्ता होना इस बात को सिद्ध कर्त्ता है कि विष्णु जल तत्व के स्वामी हैं।

हमारे कहने का तात्पर्य्य आप यह न समझियेगा कि विना अग्नि के संसार का पालन पोषण हो सकता है—कभी नहीं । हां, पोषण के लिये जल तत्व विशेष चाहिये । इसीसे इस भूगोल में पृथ्वी की अपेक्षा जल कई गुना अधिक है, परन्तु विना अग्नि के भी संसार का पालन नहीं हो सकता । पालन कौन कहे विना अग्नि के जलही नहीं रह सकता ॥

नाभि कमल ।

विष्णु के नाभि से कमल का उत्पन्न होना सुना गया है । उस कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई । विष्णु का विराट शरीर जलतत्वमय है । जलराशि के नाभि से; अर्थात् उसके केन्द्र स्थान से कमल की उत्पत्ति हुई थी । क्योंकि कमल जलही में उत्पन्न होता हुआ देखा गया है । अतः वह कमल भी विष्णु के जलमय विराट शरीर से उत्पन्न हुआ था । कहीं अन्यत्र से नहीं । इन्हीं सब प्रमाणों से हमने विष्णु को जलतत्व का स्वामी कहा है । इसके विरुद्ध कुछ प्रमाण नहीं कि विष्णुजी जलतत्व के के स्वामी नहीं हैं ।

इति श्रीशिवकुमार शास्त्रिकृते वेदान्तसिद्धान्ते त्रयोदशोऽध्यायः ।

समुद्र यात्रा से लाभ ।

विष्णु लक्ष्मीपति हैं और विष्णु जलतत्व को वश में किये हैं । जल का विशेष स्थान समुद्र में है । इसी से विष्णु भी लक्ष्मी सहित समुद्र मेंही रहते हैं । लक्ष्मी का विशेष स्थान

समुद्र में है। समुद्र लक्ष्मी का घर है। अतः जिन२ देशों की जो २ जातियां समुद्र यात्रा करती हैं वे विशेष धनवान होती हैं। पूर्व काल में भी जब समुद्र का मथन हुवा था तो लक्ष्मी प्राप्त हुई थीं। अबभी जो २ जातियां समुद्र का मथन करती हैं, समुद्र यात्रा करती अर्थात् और समुद्र से विशेष सम्बन्ध रखती हैं वे अधिक धनवती होती हैं। देखिये! भारतवर्ष में भी जो २ नगर समुद्र के तट पर हैं वे विशेष धनवान है। जैसे, बम्बई कलकत्ता और मदरास इत्यादि। यही दशा करीब २ और २ देशों की भी है।

भारतवर्ष की निर्धनता का कारण यही है कि यह जाति समुद्रयात्रा नहीं करती। समुद्रयात्रा करना तो दूर रहे यह समुद्रयात्री को पापी समझती है। भला ऐसी जाति निर्धन क्यों न हो। जो लोग समुद्रयात्रा या समुद्र के द्वेषी हैं वे मानो लक्ष्मी-पति भगवान के द्वेषी। उनपर कभी लक्ष्मी और भगवान दया नहीं करते। जिस देश के लोग समुद्र पर अधिकार जमाते हैं, जिनके वश में समुद्र होता है; वे विष्णुतुल्य होते हैं। उनकी सेवा लक्ष्मी स्वयं करती तथा जय और विजय हाथ जोड़े खड़े रहते हैं। जहाजी लड़ाई में जो चतुर हैं, जो समुद्रयात्री हैं, संसार में उन्हीं का विजय है। यह प्रत्यक्ष देखा जाता है।

विष्णुजी अत्यन्त पवित्र हैं। क्योंकि उनका तत्व जल भी अत्यन्त पवित्र है। प्रायः संसार में लोग किसी चीज को पवित्र करने के लिये जल और विष्णु के नामही का प्रयोग किया करते हैं।

देखिये:-ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यस्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

अब देखिये! जबकि जल इतना पवित्र है। और उसके स्वामी विष्णु भी पवित्र हैं तो उस जल का ख़ज़ाना समुद्र तो अत्यन्त पवित्र है। अतः जो समुद्रयात्रा करते हैं वे दोषी नहीं किन्तु अत्यन्त पवित्र हैं। इस वेदान्त के सिद्धान्तों के अनुसार जो चले हैं उनका विजय हुआ है। चाहे वे बिना जाने ही क्यों न चलें हों उनकी उन्नति हुई। प्रकृति का नियम वा ईश्वरीय न्याय किसी का पक्षपाती नहीं। उसको हिन्दू, मुसलमान, ईसाई वा किसी ख़ास देश के लोग प्रिय नहीं हैं। उसको प्रिय वही हैं जो उसके अनुसार चलते हैं। इस वेदान्त को जानते हुवे भी भारतवासी इसके अनुसार नहीं चले। उसका फल यह हुआ कि अवनति के गड़हे में गिरे और परतन्त्रता के कीचड़ में फँस गये। और देशवाले बिना इस फिलासफी को जाने भी (कुछ लाभ देखकर) इसके अनुसार चले और उनकी जय हुई। क्या बिना जाने गड़हे के पास जाने से कोई नहीं गिरेगा? उसी प्रकार बिना जाने भी सीधा रास्ता पाजाने से मनुष्य अपने मंज़िल पर पहुँच जाता है। यह न्याय है, यह ईश्वराय नियम है।

प्र०-इस क्षीरसमुद्र और दधिसमुद्रादि से क्या मतलब? क्या ये दूध और दही के समुद्र हैं?

उ०-नहीं, उत्तरी ध्रुव (North pole) और दक्षिणी

ध्रुव ((South pole) जहां पर बहुत सर्दी पड़ती है वहां के समुद्र का जल दधि के समान उजला जम जाता है उस बर्फ वा हिममय समुद्र का नाम दधिसमुद्र है । और जहां का जल विशेष साफ और कम खारा होता है उसे क्षीर समुद्र कहते हैं ।

इति श्रीशिवकुमारशास्त्रिकृते वेदान्तसिद्धान्ते चतुर्दशोऽध्यायः ।

॥ देवी के तत्व का परिचय ॥

देवी अर्थात् ईश्वरी, पृथ्वी तत्व को वश में किये हैं । इस में विशेष प्रमाण की आवश्यकता नहीं । यह प्रत्यक्ष सिद्ध है । देखिये ! जिस प्रकार ईश्वरों में एक देवी स्त्रीलिङ्ग हैं, उसी प्रकार तत्वों में एक पृथ्वीतत्व स्त्रीलिङ्ग है । इन तत्वों में पृथ्वी को छोड़कर दूसरा कोई स्त्रीलिङ्ग नहीं है अत देवी को छोड़कर दूसरा कोई इसका वश में करने वाला भी नहीं हो सकता ।

पृथ्वी तत्व का रूप पीला है । अतः देवी का रूप भी पीला सुवर्ण के समान कहा गया है ।

> इषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्र-
> बिम्बानुकारि कनकोत्तमकांतिकान्तम् ॥
>
> दुर्गा अ० ४-श्लो० ११

इस श्लोक में देवी का रूप पीला सुवर्ण के समान बताया गया है सुवर्ण भी पृथ्वी सेही उत्पन्न होता है । उसका भी रंग पीला है । देवी का रूप सुवर्ण के समान पीला होने से यह सिद्ध हो जाता

है कि देवी का विराट शरीर पृथ्वी है, और देवी पृथ्वी में व्यापक होकर पृथ्वी को वश में किए हैं।

देवी का वाहन सिंह वा व्याघ्र सुना गया है। जिसपर जो सवार होता है, जिस को वश में किये रहता है वही उसका वाहन कहलाता है। व्याघ्र संस्कृत शब्द है इसका अर्थ "पृथ्वी" से हैं (घ्रा गन्धोपादाने इति। वि+आ+घ्रा धातोः क प्रत्ययेन व्याघ्रः गन्धवती पृथ्वी) क्योंकि यह शब्द घ्रा धातु से निकला है। घ्रा मानी सूँघना, और गन्ध गुण पृथ्वी में है। "अतः व्याघ्र मानी पृथ्वी" यह सिद्ध होता है। और देवी पृथ्वी को वश में किये है। इसलिये पृथ्वी को देवी का वाहन कहा गया है देवी के विराट शरीर का वाहन पृथ्वी है।

जब विष्णुजी, रामचन्द्र होकर, दशरथ के घर में अवतार लिये थे। उस समय ईश्वरी देवी का भी अवतार सीता रूप में हुआ था। यह सीता जी (जिस समय राजा जनक एक विशेष कारण वश हल जोत रहे थे) पृथ्वी से ही निकली थीं और अन्त समय में पृथ्वी फटी और उसी में सीताजी प्रवेश कर गई इससे यह सिद्ध होता है कि सीतादेवी पृथ्वी से ही आई थीं और अन्त में फिर पृथ्वी में चली गई। ये सब बातें भी यही सिद्ध करती हैं कि देवी पृथ्वी को वश में किये हैं और देवी का पृथ्वी से घनिष्ट सम्बन्ध है।

इति श्रीशिवकुमार शास्त्रिकृते वेदान्तसिद्धान्ते पञ्चदशोऽध्यायः ।

सूर्य्य का तत्व।

इन ईश्वरों में सूर्य्य अग्नितत्व को वश में किये हैं। इसमें कुछ अधिक प्रमाण की आवश्यकता नहीं। इनका लोक (सूर्य्यलोक) प्रत्यक्ष ही सब को तेजस्क, ज्योतिपूर्ण और ऊष्ण विदित होता है। इसमें किसी को कुछ सन्देह नहीं हो सकता। क्योंकि यह अग्नि का गोला सूर्य्यलोक सबको नित्य प्रत्यक्ष है। इस ब्रह्माण्ड के सारे अग्नि के परमाणु विशेष कर सूर्य्यलोक ही में जमा होगये हैं। और दूसरे लोकों के मनुष्यों को यह विशेष चमकता हुआ और गर्म विदित होता है।

प्र०—सूर्य्यलोक में मनुष्य रहते हैं या नहीं? यदि रहते हैं तो क्या वे उसमें जल नहीं जाते?

उ०—सूर्य्यलोक में मनुष्य रहते हैं। वे उसमें जल नहीं सकते, न उनको इतना प्रकाश ही मालूम होता है। ऐसा नियम है कि जो जिसमें रहता है उसपर उसका प्रभाव नहीं पड़ता देखिये! यदि प्रकाश में से अँधियाली कोठरी में जाइये; तो आपको उसमें अन्धकार मालूम होगा। परन्तु जो मनुष्य उसी में बैठा है उसको वहां वैसा अन्धकार नहीं मालूम होता; क्यों कि वह उसी में बैठा है उसका प्रभाव उसपर नहीं है।

देखिये! मछलियां जल ही में रहती हैं इसलिये जल की शीतलता उनपर असर नहीं डाल सकती न उनको सर्दी ही होती है। वे पानी में डूबी हुई रहने से मनुष्यों की तरह मर भी

नहीं जाती। वे उसी में श्वास ले सकती हैं।

सर्प के दांत के ऊपर जो विष रहता है यदि दूसरे के शरीर में ज़रासा भी प्रवेश कर जाय तो उसका जीना कठिन हो जाय। सर्प के मुख का फुफकार मात्र लग जाने से मनुष्य के शरीर पर फफोले पड़ जाते हैं। बहुत से ऐसे भी सर्प हैं कि वे जिस रास्ते से होकर चलते हैं वहां उसके पेट के नीचे की घास सूख जाती है। बतलाइये तो यह विष कहां है? उसी सर्प के शरीर में। फिर सर्प क्यों नहीं मरता? बात यह है कि जो जिसमें रहता है वा जो वस्तु जिसमें रहती है वह वस्तु उसपर प्रभाव नहीं डाल सकती। इसीसे घर के वैद्य रोगी को अच्छा नहीं कर सकते। गांव के उपदेशक का प्रभाव वा उसके व्याख्यानों का प्रभाव उसी गांव में कम पड़ता है।

हम लोगों के पेट में भी एक अग्नि है जिसको जठराग्नि कहते हैं। यह ऐसी तेज़ अग्नि है जिससे हमारे भोजन किये हुवे पदार्थ इस प्रकार से जीर्ण हो जाते हैं जो बाहर के अग्नि से नहीं हो सकते। परन्तु देखिये हम लोगों को उसकी उष्णता मालूम तक नहीं होती। क्योंकि वह हमारे में है और हम उसमें हैं।

अब आगे चलिये देखिये! सवेरे जब तक हमारे पास धूप नहीं आई है तब तक हिमालय सुवर्ण के समान चमकता हुआ दिखलाई पड़ता है। जब हमारे पास धूप आजाती है तो उसका रंग फीका पड़ जाता है।

कीड़े के ढूँढने वालों ने अग्नि के भी कीड़े निकाल रक्खे हैं। कीटान्वेषण–विभाग के डाक्टर इस बात को अच्छी तरह मान चुके हैं इसमें सन्देह करने की आवश्यकता नहीं। हमसे पूँछिये तो हम आपको बतलावेंगे कि ये अग्नि के हरेक परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म कीड़े हैं। इन्हीं कीड़ों के ढेरी को आग कहते हैं। क्या अब भी आपको सन्देह है कि सूर्य्यलोक में मनुष्य जल जायँगे? कभी नहीं। इन विज्ञानों को विचारिये और बारम्बार मनन करिये. देखिये! कैसा आश्चर्य्यजनक विषय है। असत्य मानकर बैठ मत रहिये, अपनी बुद्धि से काम लीजिये।

अब आगे चलिये, देखिये! सबेरे जब तक हमारे पास धूप नहीं आई है तब तक उत्तर की ओर हिमालय पर्वत सुवर्ण के समान चमकता हुआ दिखलाई पड़ता है। वहीं जब हमारे पास धूप आ जाती है तो उसकी चमक नष्ट होजाती है। उसमें वह रंग नहीं रह जाता, वह बिल्कुल फीका पड़जाता है। इसका क्या कारण? इसका कारण यह है कि उसकी चमक तब तक है जब तक हमारे पास प्रकाश नहीं। जब हमारे पास भी प्रकाश है तो उसकी चमक का प्रभाव हम पर नहीं पड़ सकता। ठीक इसी प्रकार सूर्य्यलोक के मनुष्यों को सूर्य्य का प्रकाश इतना तीक्ष्ण नहीं विदित होता। देखिये! तारों की चमक दिन को दृष्टिगोचर नहीं होती, वही रात्रि में जब हमारे पास धूप नहीं है, प्रकाश नहीं है, तो चमकता हुआ प्रकाशित दिखलाई पड़ता है।

अब सूर्य्य में जो कुछ प्रकाश है वैसा हमारे पास न होने के कारण वह हम को चमकता हुआ मालूम होता है । परन्तु वह प्रकाश वहीं के मनुष्यों के लिये वैसा नहीं है ॥

सूर्य्यलोक का विवरण ।

सूर्य्यलोक में अग्निपरमाणु विशेषकर इकट्ठे हो गये हैं । इसका कारण यह है कि जो जैसा रहता है वह वैसेही परमाणुवों को अपनी ओर खींचता है । इसी से समुद्र में सब नदियाँ जमा हो जाती हैं । गँजेड़ी के पास गँजेड़ी, शरावी के पास शरावी और भँगेड़ियों के पास भँगेड़ी आप से आप इकट्ठे हो जाते हैं । इसका कारण दशवें अध्याय में हम विस्तार से लिख चुके हैं वहीं पर आप देख चुके होंगे ।

प्र०—आपने अभी कहा है कि जो जैसा होता है वैसे को अपनी ओर खींचता है । इसी से जलराशि समुद्र अपनी ओर नदियों को खींच लेता है । परन्तु यदि हम थोड़ासा (एक चिल्लू) जल गिरा दें तो वह नीचे क्यों सूख जाता है ? उसे पृथ्वी नीचे क्यों खींच लेती है ?

उ०—उसे भी पृथ्वी नहीं खींचती ; किन्तु पृथ्वी के नीचे भी जल है जैसा कि खोदने पर लोग प्रत्यक्ष देखते हैं और ऊपर भी जहां कहीं पृथ्वी है जिसे आप सूखी पृथ्वी कहते हैं उसमें भी कुछ न कुछ जल मिला रहता है । यदि जल न हो तो पृथ्वी रह नहीं सकती । फटकर आकाश में लीन हो जाय ।

वेदान्त कहता है " अद्भ्यः पृथ्वी " अर्थात् पृथ्वी जल से है । अतः जो जल पृथ्वी के नीचे है वही इस चिल्लू भर जल को नीचे खींच लेता है ।

प्र०--अच्छा तो वह समुद्र की ओर क्यों नहीं जाता ? क्या उसे समुद्र नहीं खींच सकता ?

उ०--छोटी वस्तुवों को प्रथम उससे बड़ी वस्तु जो होती है वही खींचती है । जैसे नाले छोटी नदियां में और छोटी नदियां बड़ी नदियों में तथा बड़ी नदियां समुद्र में मिलती हैं । उसी प्रकार से इस चिल्लू भर जल को खींचने के लिये वहीं का जल काफी है । परन्तु यह स्मरण रहे कि जल जलही द्वारा खींचा जाता है । देखिये ! यदि आप एक सूखे हुवे अँगोछे पर जल डालिये तो वह उतने जल को नहीं खींच सकता; किन्तु अँगोछे पर डाला हुवा जल पृथ्वी पर गिर पड़ेगा। परन्तु यदि उसे खूब भिगो कर निचोड़ के जल डालिये तो अँगोछा अधिक जल को खींच लेगा क्योंकि इस समय पहले से भी उसमें जल का अंश है ।

प्र०--अच्छा यदि ऐसा है तो जल को नीचे ही की ओर जाना चाहिए, पर जल का भाप ऊपर क्यों जाता है ? जिन जल-परमाणुवों के मध्य में आकाश अथवा पोल के परमाणु अधिक हो जाते हैं उसी को भाप कहते हैं । उनमें आकाश विशेष रहने के कारण आकाश उन्हें अपनी ओर खींच लेता है । कारण कि ऐसे जलपरमाणु जिनमें आकाश के अंश अधिक हों-

आकाशही में होते हैं।

महेश्वर का तत्व ।

इस अध्याय में ईश्वरों के मध्य जो महेश्वर हैं या देवों के मध्य जो महादेव हैं; जो इन ईश्वरों में मुख्य हैं उनके तत्व का वर्णन किया जायगा । यह लेख जो दो अध्यायों में है इस पुस्तक का मुख्य लेख है; ये अध्याय इस पुस्तक के मुख्य अध्याय हैं। इनको पढ़ने से यह बात छिपी नहीं रह जायगी कि महादेव इन ईश्वरों में सबसे श्रेष्ठ हैं ।

भूतनाथ ।

महादेव को लोग भूतनाथ कहते आये हैं । पृथ्वी, जल, तेज, वायु, और आकाश ये सब भूत कहलाते हैं । इनका नाथ आकाश है । क्योंकि आकाशही के आधार पर ये चारों भूत (तत्व) ठहरे हैं, आकाशही से उत्पन्न होते हैं, आकाशही इनका नियामक और नाथ है । यदि आकाश न हो तो ये सब कभी नहीं रह सकते । अतः आकाश सब भूतों का नाथ है और वह भी एक भूत है । जैसे नरनाथ (राजा) नरों (मनुष्यों) के नाथ हैं परन्तु वह भी एक नर (मनुष्य) होते हैं । उसी प्रकार यह भूतनाथ आकाश सब भूतों का नाथ है लेकिन आप स्वयं भी एक भूत है । महादेव का विशेष सम्बन्ध इसी तत्व के साथ है । इसीसे महादेव भी भूतनाथ कहलाते हैं । जैसे यह आकाश तत्व सब तत्वों का नाथ और सब का उत्पादक है ।

इसी प्रकार से महादेव सब ईश्वरों में मुख्य और सबके उत्पादक हैं। अतः महादेव ही आकाश तत्व के स्वामी सिद्ध होते हैं दूसरा ईश्वर इस तत्व का स्वामी सिद्ध नहीं हो सकता।

श्मशानवासी।

महादेवजी श्मशानवासी कहलाते हैं। मनुष्यों का प्राण मरने के बाद जहां लय हो उसे श्मशान कहते हैं। अतः श्मशान नाम आकाश का है। मरने के बाद प्राण कुछ देर के लिये आकाश ही में लय होता है; प्राणयुक्त जीवात्मा कुछ देर के लिये आकाश ही को प्राप्त होता है। प्राण वायुरूप है; यह "वायु" जीवात्मा के साथ मरने के अनन्तर सिवाय आकाश के दूसरे में लीन नहीं हो सकता। क्योंकि वायु का लयस्थान आकाश ही है। इसीसे आकाश का नाम श्मशान पड़ा, और आकाश महादेव का शरीर है; यही कारण है कि महादेव श्मशानवासी कहलाते हैं।

रुद्र।

महादेव का नाम "रुद्र" है इससे भी यह सिद्ध होता है कि महादेव आकाश के स्वामी हैं वा आकाश महादेव का शरीर है। क्योंकि "रु = शब्दे" इस धातु से रुद्र शब्द सिद्ध होता है। जो शब्द को उत्पन्न करे वा जिसमें शब्द गुण हो उसे "रुद्र" कहते हैं। आप जानते हैं कि आकाश का गुण भी शब्द है अतः "रुद्र" आकाश का नाम है। आकाश महादेव का शरीर है इसलिये महादेव भी रुद्र कहलाते हैं।

प्र०—जो महादेव के नाम हैं उन्हें आप आकाश का नाम क्यों बतलाते हैं ?

उ०—नाम शरीर के रूप, रंग, गुण और कर्मानुसार पड़ना है वास्तव में आत्मा का कुछ नाम नहीं पड़ सकता । आत्मा का नाम तो उसके शरीर के गुणानुसार होता है । महादेव का शरीर आकाश है, महादेव आकाश को वश में किये हैं । अतः जो आकाश का नाम है वही महादेव का भी उसके संयोग से पड़ना है ।

त्रिनेत्र ।

महादेव को लोग तीन आंखवाला कहते आये हैं । जिनमें से एक आंख अप्रकट, गुप्त वा मुँदी हुई है । उसको महादेव नहीं खोलते । कहते हैं कि वह प्रलयकाल में खुलती है । आकाश के भी तीन नेत्र हैं । एक सूर्य्य दूसरा चन्द्र और तीसरा नेत्र जो गुप्त रूप से आकाश में व्यापक है उसे अग्नि कहते हैं । यदि यह पूछिये कि बिना प्रकट के लोगों ने इसका अस्तित्व क्यों मान लिया ? तो इसका उत्तर यह है कि यह कुछ न कुछ नित्य अनेक रूपों में आवश्यकतानुसार प्रगट होती है । जैसे, अर्ध उनमिलित आंख कुछ न कुछ काम करती रहती है । परन्तु पूर्णरूप से यह प्रलयकाल में प्रकट होती है । ये नेत्र भी आकाश ही में हैं । उनके नाम हैं अग्नि, सूर्य्य और चन्द्रमा । ये नेत्र आकाश के इसलिये माने गये हैं कि ये आकाश ही में चमकते

हुवे दिखलाई देते हैं । जैसे शरीर में सबसे अधिक चमकीला हिस्सा आंख है। उसी प्रकार आकाश में सबसे अधिक चमकीले सूर्य्य और चन्द्र हैं। और तीसरी आंख "अग्नि" जो आकाश में गुप्त है प्रलयकाल में विशेष प्रकार से प्रगट होती है। जब यह प्रगट होगी तो आकाश के ऊपर की नीलिमा नष्ट होजाती है। क्योंकि यह नीलिमा जलपरमाणुवों के कारण है । जब वह अग्नि उत्पन्न होती है तो ये जलपरमाणु नष्ट हो जाते हैं । वा इन जलपरमाणुवों के नष्ट होने से वह अग्नि उत्पन्न हो जाती है। इसके उत्पन्न होने से सारे लोकों का नाश होजाता और ये सब लोक टूट फूट कर तितर वितर हो जाते हैं।

कहने का तात्पर्य्य यह है कि "त्रिनेत्र" आकाश है और आकाश के साथ महादेव का सम्बन्ध है इसलिये लोग महादेव को त्रिनेत्र कहते आये हैं। इस प्रमाण वा नाम से भी महादेव का सम्बन्ध आकाश के साथ विदित होता है।

त्रिशूलधारी।

वात, पित्त और कफ जिसे क्रम से वायु, अग्नि और जल कहते हैं। यही संसार के त्रिशूल कहलाते हैं। संसार में जितने प्रकार रोग वा शूल हैं सब इन्हीं से उत्पन्न होते हैं । जितनी बीमारियां हैं केवल जल, वायु और अग्नि के बिगड़ने से ही फैलती हैं। इन तीनों का धारण करनेवाला आकाश है । क्योंकि अग्नि वायु औ जल ये तीनों आकाशही से उत्पन्न होते और आकाशही

के आधार पर हैं । महादेव का सम्बन्ध आकाश के साथ है; इसीलिये महादेव को भी त्रिशूलधारी कहा गया है। यदि संसार में अग्नि नहीं होता तो जल नहीं रह सकता । कारण कि विना अग्नि के जल में प्रवाह नहीं होता । विना अग्नि के जल नहीं रह सकता । देखिए ! यूरोप के कई देशों में जब अग्नि प्रमाण से कुछ अधिक कम होजाता है और जिस महिने में विशेष सर्दी पड़ती है उस साल और उस महीने में वहां की नदियां पत्थर के समान जम जाती हैं। देखिये ! उस समय जब कि नदियां पत्थर के समान जम जाती हैं तब भी वहां पर कुछ न कुछ अग्नि रहता है । हां, प्रमाण से कुछ कम हो जाता है । परन्तु इतने ही से जल एक दम पत्थर होजाता है । अब ख्याल कीजिये ! यदि संसार में बिल्कुल अग्नि न रहे तो क्या संसार में जल रह सकता है ? कभी नहीं । अग्नि ही के कारण से " जल " जलरूप को प्राप्त होता है । इसीसे वेदान्त कहता है कि "अग्नेरापः" अर्थात् अग्नि से जल उत्पन्न होता है । देखिये प्रत्यक्षही जब गर्मी हुई तो प्रस्वेद रूपी जल शरीर में उत्पन्न हो जाता है । अब देखिये ! यह "अग्नि" वायु के आधार पर है। यदि आप एक बलते हुवे एक लैम्प की चिमनी को ऊपर से ढाक दीजिये तो वह उसी समय बुझ जायगा । वेदान्त कहता है " वायोरग्निः " अर्थात् विना वायु के अग्नि नहीं रह सकता । इससे यह सिद्ध होता है कि "वायु" अग्नि और जल दोनों का धारण करने वाला है । अब आगे चलिए ! वायु का भी आधार

आकाश है। यदि आकाश न हो तो वायु चले कहां ? इसीसे वेदान्त कहता है कि " आकाशाद् वायुः " अर्थात् आकाश से वायु है। कहने का तात्पर्य्य यह है कि जल, अग्नि और वायु इन तीनों का मुख्य आधार आकाशही है । और ये तीनों जब प्रकुपित होते हैं तो संसार के शूल कहे जाते हैं और इनको धारण करनेवाला आकाश है। इसलिये आकाश को त्रिशूलधारी कहते हैं। और आकाश के साथ सम्बन्ध होने से वा आकाश ही जिसका शरीर है ऐसे महादेवजी भी त्रिशूलधारी कहाते हैं। त्रिशूलधारी नाम होने से भी महादेव का सम्बन्ध आकाश ही के साथ सिद्ध होता है।

प्रलयकर्ता ।

जब किसी वस्तु का विशेष प्रकार से नाश होता है तो वह आकाशही को प्राप्त होता है। किसी वस्तु का नाश होना उसका आकाश में लय हो जाना है। सब वस्तुवों के नाश का कारण आकाश ही है। जब किसी वस्तु के परमाणुवों के बीच आकाश के परमाणु विशेष प्रकार से प्रवेश कर जाते हैं तब उस वस्तु का नाश हो जाता है। जैसे जब जल का नाश होने को होता है तो उसके अणुवों के बीच विशेष अन्तर पड़ जाता है उस समय जल धूम वा भाप का रूप धारण कर आकाश में विलीन हो जाता है। इसी अवस्था को जल का नाश कहेंगे। क्योंकि अब वह अदृश्य हो गया। " नश "=अदर्शने धातु से

नाश शब्द बना है; नाश का अर्थ अदृश्य हो जाता है। अदृश्य करने वा नाश करने की शक्ति आकाश में है। क्योंकि वह स्वयं एक अदृश्य तत्व है। इससे जिस रोगी का शरीर फूल जाता है लोग कहते हैं कि यह बहुत जल्द मरेगा। कारण कि फूलता शरीर तब है जब शरीर में आकाश अथवा पोल अधिक घुस जाता है, और जब किसी वस्तु के बीच आकाश विशेष रूप में घुसा तो उस वस्तु का नाश हुवा जानिए। अतः आकाश ही को संहारक वा प्रलयकर्त्ता कहते हैं। क्योंकि प्रलयकाल में भी आकाश ही हरेक वस्तुवों में विशेष प्रकार से घुसने लगता है। यहां तक कि हरेक परमाणुवों के बीच इस प्रकार से प्रवेश कर जाता है कि सब तितर बितर हो जाते हैं; यहां तक कि परमाणुवों के भीतर भी व्यापक होकर उन्हें भी नष्ट कर देता है। आकाश तत्व की व्यापकता के विषय में हम विस्तार से प्रथम खण्ड में लिख चुके हैं वहां पर देख लीजियेगा। सब कहने का तात्पर्य्य यह है कि प्रलयकर्त्ता आकाश है। और आकाश से महादेव से सम्बन्ध है; आकाश महादेव ही के वश में है इसलिये महादेव ही प्रलयकर्त्ता हैं। इस लेख से भी सिद्ध होता है कि महादेव आकाश ही के स्वामी हैं और वही उनका शरीर है।

कर्पूरगौर।

आकाश केवल पोल मात्र है। अतएव उसमें कोई रंग नहीं। आप यह जानते हैं कि जिसका कुछ रंग नहीं उसका

रंग श्वेत होता है । जिसने सब रंगो को त्याग दिया उसका रंग श्वेत है । वास्तव में यह श्वेत रंग कोई रंग नहीं । संसार के हर एक वस्तु किसी न किसी रंग को ग्रहण करते तथा किसी न किसी रंग को त्यागते हैं । जो वस्तु जिस रंग को त्याग करता वही उसका रंग होता है । लाल फूल का वास्तव में लाल रंग नहीं है किन्तु वह लाल रंग को त्याग रहा है सो जिस रंग को वह त्याग रहा है वही उसका रंग हुवा । इस संसार में जो ऐसे स्वार्थी होते हैं कि सब रंगों को ग्रहण करलेते और संसार के लिये कुछ नहीं त्यागते वे काले होजाते हैं । उसी प्रकार संसार के लिये जिसने सब कुछ त्याग दिया, जिसने किसी रंग को ग्रहण नहीं किया वह उज्वल कीर्ति श्वेत वर्ण का होता है । इसीसे सब देवों में श्रेष्ठ महादेव वा सब तत्वों में श्रेष्ठ आकाश तत्व श्वेत कर्पूर के समान है । इसीसे महादेव को " कर्पूरगौर " कहा गया है ।

इति श्रीशिवकुमारशास्त्रि कृते वेदान्तसिद्धान्ते सप्तदशोऽध्यायः ।

शिवलिङ्ग का वर्णन ।

आकाश शून्य तत्व है ; अर्थात् इसका आकार कुछ नहीं, केवल पोल और अवकाश मात्र है । इसीलिये शिवालयों में शिव की मूर्ति गोल दो सिरों पर कुछ लम्बी अण्डाकार स्थापन करने की विधि है । नर्मदेश्वर लिङ्ग तो स्वाभाविक ही इस प्रकार का

होता है। शिवलिङ्ग में कुछ और आकार नहीं बनाया जाता। क्योंकि कुछ नहीं का वा पोल मात्र शून्य का चिन्ह एक अण्डाकार गोल रेखा प्राचीनों ने मानी है। "०" इस अण्डाकार गोल रेखा को संस्कृत में शून्य और अङ्गरेजी में ज़ीरो कहते हैं। शून्य वा ज़ीरो मानी कुछ नहीं। जहां पर कुछ नहीं रहता वहां शून्य लिखा जाता है। शून्य से मतलब पोल से है आकाश से है। परन्तु शून्य वा पोल की कीमत कुछ नहीं, ऐसा मत समझिये। बल्कि यह शून्य (आकाशतत्व) सब से बड़ा है। ९ नव तक अङ्क हैं इसके ऊपर कोई अंक नहीं। जो इसके ऊपर आप मानते वे इन्हीं अङ्कों में से कोई अंक है। इस ९ नव के ऊपर यदि कोई है, यदि ९ नव से कोई बड़ा है, तो उसका नाम "१०" है। यह "१०" शून्य के लगाने से बना है। यदि शून्य का कुछ मोल नहीं होता तो एक के सामने हम एक २ शून्य बढ़ाते जायँ तो वह दश, सौ, हजार और दश हजार इत्यादि क्यों हो जाता है। वास्तव में यह शून्य तत्व वा आकाश तत्व माहेश्वर तत्व है। यह ० शून्य ही परमेश्वर है। इसीसे सबकी उत्पत्ति और इसी में सबका लय होता है। गणित के सारे अंक इसी शून्य से उत्पन्न होते हैं। देखिये! यह "१" अंक शून्य ही के नीचे एक छोटासा पुच्छ लगाने से बन गया है। इसी तरह सारे अंकों के रूपों को देखिये सब इसी शून्य से बने हुवे मालूम होते हैं।

प्र०—हिन्दी के सब अंक तो शून्य से उत्पन्न मालूम होते

हैं, पर फ़ारसी और अंग्रेज़ी के अंक किससे उत्पन्न होते हैं ?

उ०—फ़ारसी वा अंग्रेज़ी के अंक इन्हीं भारतवर्षीय अंकों से बने हैं । इसीसे तो फारसी में अंकों को "हिन्दसा" कहते हैं । "हिन्दसा" नाम ही इस बात की गवाही दे रहा है कि हम हिन्द से लाये गये । इसी प्रकार अंग्रेजी के अंक भी इन्हीं अंकों से बने हैं केवल थोड़ा सा फ़रक़ है । मिला देखिये ! इस विषय को हम यहां विस्तार से नहीं लिख सकते । इसके लिये एक स्वतन्त्र लेख होगा ।

शून्य का आकार गोलसा इसलिये माना गया है, कि इस शून्य तत्व आकाश का रूप यदि चारों तरफ से देखा जाय तो यह अर्ध-अण्डाकार विदित होता है । क्योंकि इसका अर्ध आकार हमारी पृथ्वी के नीचे छिपा है । पृथ्वी के ओट से हमें विदित नहीं होता । परन्तु उपर के अर्ध भाग को देखकर लोगों को ऐसा ही एक भाग नीचे का भी अनुमान हुवा । इस प्रकार से दोनों भाग मिलाने पर एक पूर्ण गोल आकार लोगों ने अनुमान किया था । यही कारण है कि पूर्व काल के लोगों ने आकाश वा शून्य तत्व का आकार गोल मान लिया (इसको भी संसार के और सब वस्तुवों के समान कल्पित ही समझना चाहिये) क्योंकि शून्य तत्व जो आकाश है सबको पहले पहल ऐसा ही विदित हुवा ।

शिवालयों में जो अण्डाकार मूर्ति होती है उसे शिवलिङ्ग

माना गया है । शिवलिङ्ग से मतबल शिव—शिश्न से नहीं है—शिवलिंग कहते हैं शिवचिन्ह को । यहां पर लिङ्ग के मानी चिन्ह के हैं । अब प्रश्न यह है कि यदि यह शिवचिन्ह है तो यह शिव के विषय में लोगों को क्या बतलाता है ? क्योंकि चिन्ह उसे कहते हैं, जो जिसका चिन्ह हो उसके विषय में कुछ बतलावे । शिवलिङ्ग गोल होकर इस बात को बतलाता है कि शिव तत्व शून्य और आकाश है । शिव इस शून्य तत्व, आकाश तत्व के स्वामी हैं ।

संसार में जितने लोक हैं वे सब गोल माने गये हैं । और हैं भी । जैसे, यह हमारा लोक जिस पर कि हम बसते हैं गोल है । इसका गोल होना वेदान्त के उस सिद्धान्त को सिद्ध करता है जिसे हम प्रथम खण्ड में सिद्ध कर चुके हैं । वह सिद्धान्त है कि "संसार असत्य है" । ये सारे लोक गोल होकर इस बात को प्रत्यक्ष कह रहे हैं कि हम लोग असत्य हैं, हम लोग कुछ नहीं, हम लोग शून्य हैं । क्योंकि गोल आकार शून्य का है ।

ये लोक ही गोल नहीं हैं किन्तु संसार के सारे व्यवहार भी गोल हैं । पृथ्वी के गोल होने का प्रमाण यह दिया जाता है कि यदि हम किसी जगह से प्रस्थान करके एकी दिशा को बराबर चले जायँ तो फिर कुछ दिन के बाद उसी जगह को आ जायँगे जहाँ से कि चले थे । यही संसार के प्रत्येक व्यवहारों की भी दशा है । यदि आपके हृदय से प्रेम निकल कर संसार में चारो

ओर जाय ; तो वही प्रेम फिर आपके पास चारो तरफ से लौट आवेगा। यदि आप अपनी ओर से चारो तरफ़ सब के ऊपर प्रेम छोड़ेंगे; तो आप के ऊपर भी चारो तरफ़ से प्रेम की वृष्टि होगी लोग आपके ऊपर प्रेम का फूल बरसावेंगे। ठीक इसी प्रकार से संसार के प्रत्येक व्यवहार चलते हैं इससे यह सिद्ध होता है कि संसार, वा संसार के प्रत्येक व्यवहार गोल हैं। और गोल होने के कारण शून्य और असत्य हैं। क्योंकि गोलाई शून्य का चिन्ह है।

यह सारा संसार शून्यही से उत्पन्न होते और फिर शून्य में ही मिल जाते हैं वर्तमान समय में भी ये गोल २ होकर इस बात का उपदेश दे रहे हैं कि हम लोग अब भी शून्य, ज़ीरो और कुछ नहीं हैं। फिर कुछ नहीं होकर भी इतने बड़े हैं कि सब लोग देखकर चकित होते हैं। जैसे, शून्य कुछ नहीं होकर भी हज़ारों संख्यावों को उत्पन्न करदेता है। तद्वत् यह सारा संसार शून्य से उत्पन्न हुआ शून्यरूप है।

यह शून्य पोल का एक ऐसा सूक्ष्म परमाणु है जिसके भीतर करोड़ों ब्रह्माण्ड चक्कर खा रहे हैं। इसी अणु के भीतर सब हैं; और सारा विश्व है। इससे भी अधिक आश्चर्य्य का विषय यह है कि वह अणु आपके भीतर है, वह दूर नहीं आपके पास है। मान्यवरों! वेदान्त के इन गूढ़ सिद्धान्तों को विचारिये और वारम्वार मनन करिये तव आप समझियेगा कि सत्य ज्ञान क्या है? और हम कौन हैं? इस शून्य अणु के विषय में हम

विस्तार से नहीं लिख सकते । परन्तु अवकाश मिलने पर इस विषय में एक स्वतन्त्र पुस्तक लिखेंगे ।

वास्तव में वेदान्त विषय ऐसा गूढ है जिसको हम जितना जानते हैं उतना किसी भाषा में पूर्णरूप से कदापि नहीं लिख सकते । न कोई आज तक लिख सका हैं न आगे लिखेगा । यह ज्ञान अनुभवगम्य तथा अनिर्वचनीय है ; यह वाणी और लेखनी से परे है । हां यह पुस्तक इतना करेगा कि जो इसे श्रद्धा और विचार से पढ़ेंगे वे अपने अनुभव से उस अनुभवगम्य ज्ञान तक पहुंच जायंगे । हमसे जहां तक हो सका है वा जहां तक कोई कर सकता है इस गुप्त ज्ञान को प्रगट करने का प्रयत्न किया हैं ।

यदि विचार दृष्टि से देखिये तो संसार के सारे नियम कुदरत के सारे क़ानून वेदान्त की सत्यता में साक्षी देने के लिये हाथ जोड़े तैय्यार हैं । वेदान्त जीव, ईश्वर वा संसार को मेटता नहीं है न इसमें से निकाल कर आपको अलग करना चाहता है क़िन्तु इनमें गूढ तत्व क्या है ? इनके बनने के नियम क्या हैं ! सत्य ज्ञान क्या है ? इसको समझाने के लिये आपके सामने उपस्थित है । वेदान्त का उपदेश पुस्तक ही रूप में आपको नहीं मिलता है किन्तु प्रकृति स्वयं आपके सामने खड़ी आपको समझा रही है । यह किताबी मज़हब नहीं है क़िन्तु यह कुदरती मज़हब और प्राकृतिक मत है ।

इसी शून्य परमाणु से यह शून्य विस्तृत आकाश उत्पन्न होता है। यह शून्य अणु 'शिव' है यह शून्य तत्व आकाश उसी का शरीर है। और यह आकाश सर्व तत्वों का उत्पादक और सब में व्यापक है। इसी शून्य अणु को बतलानेवाला, इसी की ओर ले जानेवाला इसी का चिन्ह और इसी का मार्ग शिवलिंग है। लिङ्गपुराण में भी कहा है कि जिससे सारा संसार उत्पन्न होकर जिसमें लय हो उसको शिवलिङ्ग कहते हैं। नर्मदेश्वर के गोल होने का वा शिवालयों में महादेव को गोल आकार में रखने का मतलब यह है कि यह गोल अण्डाकार मूर्ति जो देख रहे हो वह मूर्ति कुछ नहीं; किन्तु असत्य व भ्रम मात्र है। हां; इसमें जो व्यापक ईश्वर है, जिसकी सत्यता से यह शून्य गोल मूर्ति, असत्य होकर भी सत्य विदित होती है वह परेश वा परमेश्वर सत्य है। "ऐसा न हो कि कोई इस भौतिक अण्डाकार मूर्ति ही को सत्य मानले" इसी वास्ते पूर्वजों ने शिवलिङ्ग वा शिवमूर्त्ति को गोलाकार वा शून्याकार रक्खा है। इसका मतलब यही है कि इसके समान-"शून्य", तथा भूगोल-और यह मूर्ति तीनों असत्य हैं। इसीसे अबतक मूर्ख से मूर्ख आर्य्यसंन्तान भी शिवालयों में महादेव के मूर्ति को देखकर कभी "जय गोल मूर्ति महाराज की वा जय पत्थर महाराज की! तुम बड़े चिकने और गोल हो तुम को नमस्कार है" ऐसा नहीं कहती; किन्तु "हे महादेवजी आप सच्चिदानन्द ईश्वर हो आपकी जय हो"

इत्यादि कहती हुई देखी गई है। अतः यह जाति बुतपरस्त या मूर्ति-पूजक नहीं है। जो इसे पत्थर का पूजक बतलाते हैं वह बड़ी भूल करते हैं। यदि ये भारतवासी पत्थर के पूजक होते तो "जय महादेव" की जगह "जय पत्थर महाराज की कहते। परन्तु ऐसा नहीं कहते इससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन भारतीय पुरुष इस सिद्धान्त को समझते थे। वह जानते थे कि यह गोल मूर्ति कुछ नहीं, किन्तु इसमें जो व्यापक महेश्वर है वही मेरा उपास्य देव है।

इति श्रीशिवकुमारशास्त्रि कृते वेदान्तसिद्धान्ते अष्टादशोऽध्यायः।

वेदान्तियों के उपास्य देव महेश्वर की श्रेष्ठता।

यह प्रबल युक्ति व प्रमाणों से सिद्ध हो चुका कि महादेव आकाश तत्व के स्वामी हैं अतः जैसे, आकाश-तत्वों में मुख्य, सब तत्वों का उत्पादक, सब से बड़ा और सबका स्वामी है; उसी प्रकार महादेव भी इन ईश्वरों में मुख्य, सबके उत्पादक, सब से बड़े और सब के स्वामी हैं। यदि कोई पक्षपातरहित होकर विचारे तो यह सिद्ध होने में कुछ बाकी नहीं है कि महादेव के सिवाय और कोई ईश्वर आकाश तत्व का स्वामी नहीं हो सकता। क्योंकि तीन ईश्वरों के तत्व जो २ हैं पीछे सिद्ध कर दिये गये हैं। आगे चल कर गणेश का तत्व वायु सिद्ध कर दिया जायगा। ये ईश्वर जिस २ तत्व के स्वामी सिद्ध

किये गये हैं वे २ उसी २ तत्व के स्वामी हैं । कोई इसके विरुद्ध इतना प्रबल प्रमाण नहीं दे सकता अतः महादेव पूर्वोक्तानुसार आकाश के ही स्वामी हैं। और आकाश तत्व का स्वामी होने से सिवाय महादेव के और कोई दूसरा ईश्वर श्रेष्ठ नहीं हो सकता। यह साम्प्रदायिक झगड़ा नहीं है, यह वास्तविक और सत्य वेदान्त का ज्ञान है । इसको पक्षपातरहित होकर विचारिये और इस सत्य ज्ञान पर विश्वास कीजिये देखिये,—महादेव को वेद में भी श्रेष्ठ कहा गया है:—

" तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्
तन्देवतानां परमञ्च दैवतम् ।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥ "

कहते हैं कि यदि ये लोग ईश्वर हैं तो महादेव महेश्वर कहलाते हैं । यदि बाकी चार, " देवता " कहलावेंगे तो शिव देवता के मध्य में परमदैवत, परमदेव अर्थात् महादेव कहे जायँगे । यदि ये संसार के पति हैं, तो शिवजी परमपति, परेश परमेश्वर हैं । वेदान्ती ऋषि लोग कहते हैं कि हम उसी परमेश्वर महादेव, को भुवनेश जानते हैं । वेही हम वेदान्तियों के उपास्य देव हैं ।

बहुत से लोग ऐसे हैं जो " स ब्रह्मा स विष्णुः सेन्द्रः परस्वराट् " ऐसे २ मन्त्रों का प्रमाण देकरके कहते हैं कि ये

विष्णु और शिवादि सब एकही हैं । हम भी कहते हैं कि विष्णु और शिवही एक क्यों ? किन्तु वेदान्त से तो सारा संसारही एक महेश्वर है । देखिये ! वेदान्त कहता है " सर्वं खल्विदं ब्रह्म, " " ॐ इति ब्रह्म, ओमिति सर्वं " । ये सब वचन सारे संसार को ब्रह्म सिद्ध करते हैं । ब्रह्मा, विष्णु, और इन्द्रही ईश्वर नहीं, किन्तु यह जीवात्मा भी ईश्वर है । परन्तु जीवात्मा व परमात्मा में केवल इतना ही भेद है कि जीवात्मा अज्ञान के वंश में है परन्तु ईश्वर परमज्ञानवान होकर अज्ञान वा माया को वृश में किये है । जीव और ईश्वर का एक ही तत्व है ; दोनों वास्तव में एक हैं । परन्तु ईश्वर परम--ज्ञानवान होने से श्रेष्ठ है । देखिए, पशुओं से मनुष्य क्यों श्रेष्ठ है, क्योंकि मनुष्य पशुवों से अधिक ज्ञानी है । क्योंकि ज्ञान ही में बल है । ज्ञान ही एक ऐसा पदार्थ है जिस से मनुष्य चाहे तो अपने से बड़े सैकड़ो हाथियों पर भी हुकूमत कर सकता है । ज्ञान ही के बल से, मनुष्य इञ्जिन् इत्यादि निकाल कर, वह काम कर लेता है, जो सैकड़ों, पशु मिलकर भी नहीं कर सकते । बन्दूक, बाण, तोप अनेक प्रकार के हथियारों को बनाकर वह सिंह ऐसे तेज़ और बलवान पशु को भी अपने वश में किए है । अधिक क्या कहें बल केवल ज्ञान में है । पशुओं के मध्य मनुष्यों की श्रेष्ठता केवल ज्ञान के कारण मानी गई है । ज्ञान श्रेष्ठता का लक्षण है । अतः जिसमें जितना ही विशेष ज्ञान होगा वे उतने

ही इस दृष्टि से विशेष माने जायँगे ।

वेदान्त जितनाही एकता वा अद्वैत को बतलाता वहउतनाही बहुत्व वा द्वैत को भी बतलाने को तैय्यार है । यह द्वैत और अद्वैत के ज्ञान को स्पष्ट करता है । यह वेदान्त,—सिद्धान्त-काल और पराकाष्टा का ज्ञान है । इसको जानने से आपको यह मालूम हो जायगा कि, किस देश में, किस विषय में, किस तत्व से ये एक हैं और किस प्रकार मे इनमें भेद है । इनके भेद का तत्व क्या है, " भेद कैमे है " और " कैसे एक है " इसी सत्य और वास्तविक रूप के ज्ञान को वेदान्त कहते हैं । वास्तव में सारा संसार एक तत्व से बना हुवा और एक है । भेद का कारण अज्ञान, भूल और माया है । इनमें जिसको जितनाही न्यून अज्ञान है, जिसके ऊपर अज्ञान. भूल वा माया का प्रभाव जितना ही कम है वह उतना ही औरों से श्रेष्ठ है । इसी न्याय से महादेव जी भी सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होते हैं ।

जो लोग मनुष्य से ईश्वर को श्रेष्ठ मानते हुवे भी सूर्य्य देवी, विष्णु और शिवादि को एक मानते हैं वे बड़ी भूल करते हैं । क्योंकि जिस प्रकार से मनुष्य और ईश्वर में भेद है उसी प्रकार से देवी, सूर्य्य, गणेश, विष्णु और शिवादि में भी भेद है। इनमें शिव को सबसे अधिक और पूर्ण ज्ञान होने से शिव सर्व-श्रेष्ठ हैं । देखिये ! आपके संस्कृत के भीतर जितनीं विद्यायें हैं सबके आदि आविष्करता मबके आदि उपदेष्टा तथा सब पुराणों,

इतिहासों, मन्त्रों और योगादि अद्भुत शिक्षाओं के आदि शिक्षक वा गुरु महादेव हैं । रामायण के वक्ता भी महादेव ही माने गए हैं । देखिये तुलसीदासजी क्या कहते हैं ।

कीन्ह प्रश्न जेहि भांति भवानी, जेहि विधि शंकर कहेउ बखानी ।
सो सब हेतु कहब हम गाई, कथा प्रबन्ध विचित्र बनाई ॥

इसके सिवाय तुलसीदासजी ने जो यह भाषा रामायण बनाया है सो भी उन्ही की कृपा से । क्योंकि निम्नलिखित दोहेको स्वयं गोस्वामीजी ने कहा है—

सपनेहु सांचेहु मोंहिपर, जो हर गौरि पसाउ ।
तो फुर होइ जो कहउँ मैं, भाषा भणित प्रभाउ ॥

देखिए ! भारतवर्ष में जितने तन्त्र मन्त्र प्रचलित हैं उनमें भी महादेव ही का नाम लिया जाता है । और उनके आविष्कर्त्ता भी महादेव ही माने जाते हैं । इसको तुलसीदासजी भी स्वीकार करते हैं:—

कलि विलोकि जगहित हर गिरिजा ।
शावर मंत्र जाल जिन सिरिजा ॥
अनमिल आखर अर्थ न जापू ।
प्रगट प्रभाव महेश प्रतापू ॥

यह बात किसी विद्वान से छिपी नहीं है कि संस्कृत विद्या सब विद्यावों से पुरानी और सबकी जननी है । संसार की सब विद्यायें इसी से निकली हैं । क्योंकि संसार की कोई भाषा इससे

अधिक पुरानी सिद्ध नहीं होती । इन सब बातों को कितने पाश्चात्य विद्वान भी स्वीकार करते हैं । और अब वह समय आरहा है कि सभी विद्वान एकमत हो संस्कृत विद्या को सब विद्यावों तथा सब भाषावों की जननी मानेंगे । हम इस विषय को अवकाश मिलने पर कभी विस्तार से लिखेंगे । अब इस संस्कृत साहित्य को अवलोकन करने से यही विदित होता है कि, इसके आदि प्रचारके, इसके आदिउपदेशक, महादेव ही हैं । देखिये ! यह अत्यन्त प्राचीन श्लोक क्या कहरहा है—

नृत्यावसाने नटराजराजो,
ननाद ढक्कां नव पञ्च वारान् ।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धा-
नेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम् ॥

इस श्लोक से यह स्पष्ट विदित होता है कि व्याकरण सूत्रों के भी आदि रचयिता महादेव ही हैं । सब से प्रथम महादेव ही व्याकरण सूत्रों की शिक्षा दे, संसार में संस्कृत विद्या को प्रचलित किया था।

संस्कृत विद्या में वेद ही सबसे प्राचीन पुस्तक है । कहते हैं कि जब से वेद का प्रचार हुवा तभी से संसार में संस्कृत विद्या भी प्रचलित हुई । उस वेद के भी आदि उपदेष्टा महादेव हैं । इस के प्रमाण में निम्नलिखित यजुर्वेद के मन्त्रों को पढ़िये:—

योदेवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं सनो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ यजु० श्वेता० अ० ३ मं० ४ ॥

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै तंह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये । यजु० श्वेता० अ० ६ मं० १८ ॥

अर्थ—जो सर्वज्ञ (महर्षिः) विश्व का मालिक रुद्र अर्थात् महादेव देवतों के उत्पत्ति और स्थिति का कारण हैं, जिसने ब्रह्मा को उत्पन्न किया । वह महादेव हमको (शुभया बुद्धया) आत्मज्ञान में लगावे ॥ १ ॥

जिसने प्रथम ब्रह्मा को उत्पन्न कर वेदों का उपदेश दिया (वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै) । जिसने देवने वेदान्तज्ञान वा आत्मज्ञान (आत्मबुद्धिप्रकाश) का उपदेश दिया । उस देवदेव महादेव के शरण में हम मुमुक्षु लोग प्राप्त होते हैं ।

इसके पहले मन्त्र से यह स्पष्ट विदित होता है कि रुद्र ने ही ब्रह्मा को उत्पन्न किया । दूसरा मन्त्र इस बात का स्पष्ट साक्षी है कि रुद्र (महेश्वर) ही ने ब्रह्मा को पहले पहल वेदों का ज्ञान दिया इसीसे वेदों ने महादेवजी को सर्व विद्यावों का ईश्वर माना है । देखिये निम्नलिखित वेदमन्त्र इस बात को स्पष्ट रूप में कह रहे हैं:—

" ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम् ।
ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोधिपति ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् ॥ "

यजु० मं० १० ॥

जो ओंकारस्वरूप श्रेष्ठ (ब्रह्मा) सदाशिव सब विद्यावों

के रचयिता या मालिक हैं (ईशानः सर्वविद्यानाम्), जो सब प्राणियों के तथा पञ्चभूतों के (भूतानाम्) ईश्वर हैं, जो ब्रह्मा के पति तथा ब्रह्मज्ञानियों के भी उपास्य देव वा पति हैं (ब्रह्मणोऽधिपतिः) वे महादेव हमारे लिये कल्याणकारी हों।

इस मन्त्र से यह स्पष्ट विदित होता है कि महादेव सर्व विद्यावों के ईश्वर और रचयिता हैं। यह सर्वथा यथार्थ है; क्यों कि सब विद्यायें इसी वेद और संस्कृत विद्या से निकली हैं और इस वेद तथा संस्कृत के आदि प्रचारक वा गुरु अनेक प्रकार के छान बीन से महादेव ही सिद्ध होते हैं। अतः " महादेव ही सर्वज्ञ हैं " यह निर्विवाद सिद्ध होता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं। सर्वज्ञ होने के कारण हमने जो महादेव को देवी, सूर्य्य, विष्णु से और गणेश से श्रेष्ठ कहा है वह सिद्ध हो जाता है। महादेव की श्रेष्ठता में कुछ पक्षपात नहीं है। विचारिये, वेदान्त का उच्चज्ञान यही उपदेश दे रहा है।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्,
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।
यजु० अ० ३ मं० ६०

यह यजुर्वेद का मन्त्र है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि महादेव सर्व देवों में श्रेष्ठ हैं—क्योंकि उपरोक्त वेद के मन्त्र में महादेव को " त्र्यम्बक " कहा है। " त्रयाणां विष्णु सूर्य्य गणेशानामम्बकं पितरं त्र्यम्बकं " जो विष्णु, सूर्य्य और गणेश

इन तीनों ईश्वरों का पिता है उसे त्र्यम्बक कहते हैं । "अम्बा" माता को कहते हैं यह सभी जानते हैं । यदि "अम्बा" शब्द में से स्त्रीलिंग प्रत्यय "टाप्" निकाल दिया जाय तो "अम्ब" शब्द सिद्ध होगा । अम्बा मानी माता तो अम्ब शब्द का अर्थ पिता होगा । इसी में "क" प्रत्यय लगाने से स्वार्थ में अम्बक का अर्थ भी पिताही होगा । अतः त्र्यम्बक का उपरोक्त अर्थ निर्विवाद सिद्ध होता है ।

प्र०—महादेव जबकी तीनही ईश्वरों के पिता हैं तो औरों का पिता कौन है ?

उ०—और कोई हई नहीं । इन पांचो ईश्वरों में एक महादेव ही हैं जो सबके पिता हैं । बाकी "देवी" सो महादेव की स्त्री मानी जाती हैं, उनके पिता महादेव कहला नहीं सकते । अतः विष्णु, सूर्य्य और गणेश इन्हीं तीनों के पिता शिव जी हैं; और इन तीनों के पिता होने से महादेव सबके पिता हैं और सबसे श्रेष्ठ हैं । देखिये आकाश भी जो महादेव का तत्व है वह सब का पिता है ।

इसा मसीह महादेव ही को बारम्बार पिता कहे हैं । क्योंकि इसा मसीह ने कई एक स्थलों पर कहा है "हमारा पिता जो आकाश पर है"—इसका मतलब यह है कि हम उस पिता को बुलाते हैं जिस का सम्बन्ध आकाश के साथ है, जो आकाश रूप है, जो आकाश का स्वामी है । आकाश का स्वामी कौन है,

आकाश का किस ईश्वर के साथ सम्बन्ध है इसको हमने पहले प्रमाण के साथ सिद्ध कर दिया है। इसी प्रकार पिता शब्द भी किसके लिये आवेगा सिद्ध हो चुका । इस प्रकार विचारने पर विदित होता है कि महादेव ही को इसा मसीह ने पिता कहा है। दूसरे को नहीं।

प्र०—इसा मसीह ने महादेव को आसमान पर क्यों कहा क्या वे और जगहों पर नहीं हैं ?

उ०—उसका मतलब यह नहीं है कि वे और जगहों पर नहीं हैं,—वे आसमान ही पर हैं, वे आसमान पर सवार हैं अर्थात वे आसमान को वश में किये हैं। (आसमान) सब जगह पर और सब में है इसे हम प्रथम खण्ड के तेरहवें अध्याय में सिद्ध कर चुके हैं उसे वहां पर देख लीजिये । अतएव, आकाश से सम्बन्ध रखनेवाला, उसको वश में करनेवाला, आसमानपर का पिता, सब में और सब जगह पर है। ऐसा कोई स्थान नहीं जहां पर कि वह नहीं है।

इसी से प्रायः लोग ईश्वरोपासना करते समय आकाश की ओर, ऊपर को, दृष्टि करते हैं। क्योंकि नीचे की अपेक्षा ऊपर की ओर मनुष्यों को (मायावश) आकाश विशेष रूप मे दीखता है। अतः आकाशस्थ ईश्वरीय आकर्षण—शक्ति उपासकों की भावना के अनुसार उनकी दृष्टि को ऊपर की ओर विशेष प्रकार से खींचती है और उपासक भक्त ऊपर को देखता है। यह सब गुप्त भेद है । जिसे ऋषियों और महात्मावों ने विशेष

प्रकार से जाना है। वही उच्चज्ञान आज आपलोगों के लिये प्रकाशित किया गया है इन सब बातों से महादेव ही परमेश्वर सिद्ध होते हैं। इन्हीं की उपासना पूर्वकाल में विशेष कर प्रचलित थी। इसी से प्राचीनकाल के शिवालय अधिक पाए जाते हैं। ठाकुरद्वारे तो विशेष कर तीन सौ वर्ष से इधर के हैं। ठाकुर द्वारों से अधिक पुराने बौद्ध मत के मन्दिर हैं। और शिवालय यहीं नहीं, किन्तु वे, और २ देशों के भी पुराने खँडहरों में पाये जाते हैं। मक्के में एक शिवलिंग वर्त्तमान है जिसे मुसलमान लोग जन्नत का पत्थर कह कर चूमते हैं।

शिवजी को प्रलयकर्त्ता हरेक पुराणों ने माना है। क्यों ? देखिए, आप के मकान पर सुफेदी, जो चाहे, वह कर सकता है; जो चाहे आपके मकान की रक्षा, मरम्मत और पालनादि कर सकता है। पर गिराने का, वा बेंचने का, किसी को अधिकार नहीं; अर्थात् नाश का अधिकार स्वामी ही को है। प्रलयकर्त्ता होने से महादेव ही सबके स्वामी सिद्ध होते हैं। क्योंकि नाश मालिक ही कर सकता है। अतः महादेव की परमेश्वरता और महानता हर प्रकार से सिद्ध है। परमेश्वर, महेश्वर और परमात्मा महादेव ही के नाम हैं। यही वेदान्तियों के उपास्य देव हैं। अतः इस अध्याय को समाप्त करने के प्रथम प्रेम से कहिये-

ॐ शिवः ॐ शिवः ॐ शिवः

इति श्री शिवकुमारशास्त्रि कृते वेदान्तसिद्धान्ते शिवस्य श्रेष्ठत्वोपपादनन्नाम एकोनविंशोऽध्यायः।

वामदेव महादेव की श्रेष्ठता ।

मार्ग दो हैं एक प्रवृत्ति मार्ग दूसरा निवृत्ति मार्ग, एक भोग मार्ग दूसरा योग मार्ग, एक प्रेय मार्ग दूसरा श्रेय मार्ग, एक परतंन्त्र-मार्ग दूसरा स्वतन्त्र मार्ग, एक दक्षिण मार्ग, दूसरा वाम मार्ग। प्रवृत्ति-मार्ग, प्रेय मार्ग और परतन्त्रादि मार्ग दक्षिण मार्ग के बोधक हैं, और निवृत्ति, योग, श्रेय और स्वतन्त्रादि मार्ग वाम मार्ग से मतलब रखते हैं। इस उत्तम वाम मार्ग के देवता, स्वामी, उपदेशक वा गुरु महादेव हैं, अतः महादेव का नाम वेदों में वामदेव कहा है।

दक्षिण भुजा की ओर दक्षिण और वाम भुजा की ओर उत्तर दिशा है। दक्षिण-मार्ग, भोग-मार्ग होने से,-दक्षिण ओर नरक और यमराज का स्थान माना जाता है। तद्वत् वाम-मार्ग श्रेयमार्ग होने के कारण वामदिशा (उत्तरदिशा) की ओर महादेव, कैलाश और स्वर्ग का स्थान माना गया है। इसी से कोई भी शुभकर्म आर्य्य लोग दक्षिण ओर मुख करके नहीं करते।

उपरोक्त चित्रानुसार पृथ्वी खड़ी आकाश में घूम रही है।

पृथ्वी के चारो ओर से इसका ऊपरी विभाग उत्तर की ओर है और निम्न भाग दक्षिण को । इसी से दक्षिण मार्ग मनुष्य को नीचे ले जाने वाला और नरक में डालने वाला है । तद्वत उत्तर मार्ग जिसे वाममार्ग कहते हैं मनुष्य के उन्नति का साधन और मोक्ष का मार्ग है । यही कारण है कि जिससे आर्य्य लोगों ने महादेव का निवास स्थान उत्तर की ओर माना है ॥

अब इसमें जो विशेष वक्तव्य है सो सुनिये—ऊपर के चित्र को देखने से यह मालूम होता है कि पृथ्वी का ऊपरी विभाग ठीक सीधा नहीं है, किन्तु ईशान कोण की ओर कुछ झुका हुआ है । इसी से इस कोण का नाम "ईशान कोण" हुआ क्योंकि ईशान नाम महादेव का है ।

महादेव का स्थान उत्तर को इसलिये माना गया है कि इसका उत्तरी ध्रुव (North Poel) ऊपर की ओर है । इसीसे नक़शे में उत्तर की दिशा ऊपर की ओर और दक्षिण दिशा नीचे को मानी जाती है । पिछले अध्यायों में महादेव का सम्बन्ध आकाश के साथ प्रबल प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है । और आकाश का स्थान भी ऊपर को माना जाता है । अतः महादेव का निवासस्थान भी ऊपर की ओर है । कारण कि ऊपर या उत्तर दोनों एकही शब्द हैं । उत्तर का अर्थ ऊपर है । उत्तर की दिशा से सिद्ध होता है । इसीसे, प्राचीन काल से जो लोग यह मानते आते हैं कि " महादेव उत्तर दिशा के स्वामी हैं वा उत्तर दिशा

के देवता हैं" वह सयुक्ति विदित होता है। इस में रञ्चक मात्र भी सन्देह नहीं।

इस उत्तर की दिशा को (जो दक्षिण दिशा के विपरीत माना जाता है) हम वाम दिशा भी कह सकते हैं। यहां वाम और उत्तर का एकी अर्थ है। वाममार्ग वा उत्तर मार्ग परमेश्वर का मार्ग है। इसी से जब सूर्य्य उत्तरायण होते हैं वा वाम दिशा को आते हैं तभी महात्मा लोग अपने शरीर को छोड़ना शुभ समझते हैं। जिस काल में सूर्य्य उत्तरायण होता है वा जिस समय सूर्य्य वाम दिशा को प्राप्त होता है वह समय शास्त्रों में मोक्षदायी माना गया है।

सूर्य्य में आकर्षण शक्ति है वह जब उत्तर की ओर होता है तो योगी अनायास ही महेश्वर के स्थान को प्राप्त होते हैं। क्योंकि महादेव का स्थान उत्तर की ओर सिद्ध हो गया है। उत्तरायण काल में सूर्य्य सर्वदा ईशानकोण से निकलता है। उस समय सूर्य्य ठीक उत्तरी ध्रुव के ऊपर रहता है। इसी से उत्तरी ध्रुव में छः महीने का दिन और छः महीने की रात होती है। वहां का उत्तरायण दिन और दक्षिणायन रात्रि है। योगी को मरने के बाद इसी मार्ग से जाना होता है। अतः दिन में जाना अच्छा माना गया है। इसमें कइ एक शंकायें हो सकती हैं परन्तु विस्तारभय से अभी यहां नहीं लिख सकते। अवकाश मिलने पर इसके लिये एक स्वतन्त्र लेख होगा। परन्तु विचारवानों के लिये इतना भी बहुत है।

प्र०–क्या शिवोपासना वा वाममार्ग में मद्य मांस और मछली का खाना धर्म लिखा है ? यदि नहीं तो यह किसका कथन है ?

श्लो०।

गोमांसं भक्षयेन्नित्यं पिबेदमरवारुणीम्।
कुलीनं तमहं मन्ये, इतरे कुलघातकाः॥ १॥

दोहा।

जो नर मछरी खातु हैं, मूड़ा पोंछि सहीत।
सो वैकुंठे जातु हैं, नाती पूत सहीत॥ २॥

श्लोक।

मद्यं मांसञ्च मीनञ्च मुद्रा मैथुनमेवच।
एते पञ्चमकाराः स्युर्मोक्षदा हि युगे युगे॥ ३॥

उ०–शिवोपासक वा वाममार्गी मद्य, मांस वा मछली नहीं खाते। जो लोग कहते हैं कि वेदान्ती पाप पुण्य को नहीं डरते वे बड़ी भूल में हैं। प्रायः लोगों से कहते सुना गया है कि अजी ! यदि मछली और मांस खाना हो तो शिव का मंत्र लेलो। उनसे पूंछना चाहिये कि शिवोपासना में यह अधर्म करना कहां लिखा है। वे कहते हैं कि वेदान्ती, शैव और वाममार्गी एक ही होते हैं। इनमें सब कुछ खाया पीया जाता है। परन्तु इसमें कहनेवालों की भूल है। वाममार्ग, वेदान्तमार्ग वा शिव-मार्ग अधर्ममार्ग नहीं हैं। किन्तु यह योगिराज महादेव का चलाया हुवा है। यह योगमार्ग है। उपर कहे हुवे श्लोक योग

से सम्बन्ध रखते हैं। आपने ऊपर जो गोमांस भक्षण के विषय में प्रमाण दिया है। उस " गोमांस " का अर्थ दूसरा है। देखिये उसी श्लोक के आगे का श्लोक यह है।

गोशब्देनोदिता जिह्वा तत्प्रवेशो हि तालुनि ॥
गोमांसभक्षणं तत्तु महापातकनाशनम् ॥ १ ॥
जिह्वाप्रवेशसंभूतवह्निनोत्पादितः खलु ॥
चंद्रात्स्रवति यः सारः स स्यादमरवारुणी ॥ २ ॥

यह खेचरी मुद्रा के प्रकरण का श्लोक है। यहां " गो " शब्द से मतलब जिह्वा से है। " इसका तालु में प्रवेश करना " गोमांस भक्षण कहलाता है जो पातकों का नाश करनेवाला है। ऐसा करने से एक प्रकार का जल ऊपर से चूता है। इसी जल को योगी लोग अमरवारुणी कहते हैं। अस्तु, दो तो आप समझ गये एक मद्य, दुसरा मांस। अब मीन अर्थात मछली के विषय में कहते हैं उसे भी सुन लीजिये। दूसरे दोहे में जो मछली के विषय में कहा है उससे यह न समझिये कि मछली के खानेवाले स्वर्ग जायँगे; किन्तु उसी दोहे के अनुसार मछली के खानेवाले नरक में गिरेंगे। क्योंकि उस दोहे में कहा है कि जो " मूडा पोंछि सहीन " बिना काटे कूटे समूची मछली निगल जाते हैं वेही वैकुंठ जायँगे; अन्य नहीं। परन्तु जितने मछली के खानेवाले हैं सभी काट कूट कर खाते हैं। अतः ये सभी नरक में गिरेंगे ॥

अब प्रश्न यह हो सकता है कि समूची मछली कोई कैसे

निगलेगा ? तो इसका उत्तर यह है कि यह योगियों की मछली जिसके खाने से वैकुंठ होता है दूसरी है। योगी लोग हृदय को पोखरा माने हैं। उसमें पोखरे की भांति एक कमल भी है। इसी पोखरे में एक मछली विचरती है जिसको " श्वासवायु " कहते हैं। इस " श्वासवायु के दो भेद हैं। "एक प्राण" दूसरा " अपान "। प्राण उसका मुँड है और अपान पोंछ। प्राण का स्थान वाहर नाक के नीचे १२ अंगुल पर और अपान का भीतर पेट की ओर है। अब इसका साधन यह है कि यह श्वास न भीतर पेट की ओर जाने पावे न वाहर, किन्तु दोनों तरफ़ से उठाकर ऊपर ब्रह्मरन्ध्र में लेजावे तो इस मछली का मुँड पुच्छ सहित निगलना सिद्ध हो जाय। यही वैकुंठ का साधन और वैकुंठ (मोक्ष) का देने वाला है।

प्र० —पर योगी नाती पूत सहीत कैसे तर जायगा ?

उ०—जीवात्मा का पुत्र चित्त और चित्त का वेटा मन है। फिर इसके अनेक लड़के और लड़कियाँ हैं। जिससे अनेक प्रकार की वृत्तियां, विचार और इन्द्रियां उत्पन्न हुई हैं। उपरोक्त साधन करने पर ये सब वहीं ब्रह्मरन्ध्र रूपी वैकुंठ में लीन हो जाते हैं। इस नाती पूत से सांसारिक नाती पूत से कुछ सम्बन्ध नहीं।

नाक के जो दोनों छिद्र हैं उनका नाम इड़ा और पिङ्गला हैं। इसको योगी लोग नदी मानते हैं इस में विचरनेवाली एक मछली है जिसे श्वास कहते हैं।

इडा हि पिंगला ख्याता वाराणसीतिहोच्यते ।
वाराणसी तयोर्मध्ये विश्वनाथोऽत्र भाषितः ॥
इडाहि भगवती गंगा पिंगला यमुना नदी ॥ (शिवसंहिता)

अर्थ—ईड़ा और पिङ्गला जो नाड़ी है उसी को वरुणा और असी नदी कहते हैं । इन दोनों का जहां पर मेल हुवा है उसी को वाराणसी (बनारस) कहते हैं यहीं पर विश्वनाथ का दर्शन होता है ॥ १ ॥ दूसरे श्लोक में ईड़ा को गंगा और पिंगला को यमुना नदी कहा है ॥ २ ॥ इन सब श्लोको से विदित होता है कि योगी लोग इन्हीं नाड़ियों को नदी और श्वास को मछली माने हैं ।

अब तीसरे श्लोक का अर्थ सुनिये जिसमें मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन इन पञ्च मकारों को मोक्षदायी कहा । जिह्वा को तालु बिवर में प्रवेश करने को मांस भक्षण कहते हैं ऐसा करने पर तालु से गिरते हुवे मद्य का पान होता है । जब तालु के ऊपर जिह्वा चढ जाती है तो श्वास भी रुक जाता है । इसी को मीन भक्षण कहेंगे । इस प्रकार जब जिह्वा ऊपर को जाकर श्वास को रोकती है उस समय के साधन को * खेचरी "मुद्रा" कहते

* इस समय खेचरी मुद्रा करने की कोई आवश्यकता नहीं इस विषय के अच्छे गुरु सब जगह नहीं मिल सकते हैं । योग विषय में चित्तवृत्ति का रोकना ही सबसे अधिक कल्याणकारी और सुगम है । इस समय खेचरी इत्यादि के लिये प्रयत्न नहीं करना चाहिये ।

हैं। फिर मुद्रा लगने पर जीवात्मा वो परमात्मा का मेल हो जाता है इससे योगी लोग इस अवस्था को मैथुन कहते हैं। इस प्रकार से योगी, वेदान्ती, शैव वा वाममार्गी इन पञ्च मकारों को मोक्षदायी मानते हैं।

तात्पर्य्य कहने का यह है कि यह वाममार्ग योगमार्ग हैं। इसका अर्थ न समझकर लोग इसे भ्रष्टमार्ग समझा करते हैं। परन्तु यही एक मार्ग है जिससें मोक्ष मिल सकता है। इस वाम मार्ग और वेदान्तमार्ग में कुछ भेद नहीं। इसीसे व्यासजी ने अपने वेदान्तशास्त्र का नाम उत्तर मीमांसा रक्खा क्योंकि उत्तर और वाम का एकही अर्थ है। इस वाम मार्ग वा वेदान्त मार्ग के भी आदि गुरु महादेव ही हैं। इसी से वेद में भी महादेव को वामदेव कह कर सब देवतों से श्रेष्ठ कहा है। देखिये यह निम्नलिखित यजुर्वेद का मंत्र क्या कह रहा है।

वामदेवाय नमो ज्येष्ठा नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः।
कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणायनमो

वेद कहता है कि ज्येष्ठ, श्रेष्ठ रुद्र स्वरूप वामदेव को नमस्कार है। इस मन्त्र में " रुद्र " शब्द आया है। रुद्र नाम महादेव का हम सिद्ध कर चुके हैं। अतः यह बात सिद्ध होगई कि वद ने महादेव को वामदेव माना है। और इन्हीं वामदेव को सबसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ कहा है। अतः महादेव को जो इस पुस्तक में सर्वश्रेष्ठ कहा

गया है वह वेदानुकूल है। वेद और वेदान्तानुसार महादेव ही का नाम परमेश्वर है और यही परमेश्वर सबके उपास्य देव हैं।

इति श्रीशिवकुमारशास्त्रि कृते वेदान्तसिद्धान्तेविंशतितमोऽध्यायः।

उपास्य देव एक परमेश्वर है।

प्र०-क्या वेदान्ती लोग पांचो ईश्वरों की उपासना करते हैं?

उ०-नहीं, वेदान्ती लोग केवल परमेश्वर ही की उपासना करते हैं। और बाकी चारो ईश्वरों को परमेश्वर के अन्तर्गत मानते हैं—जैसे एक महान तत्व आकाश के अन्तर्गत शेष चारो तत्व हैं। शिव की उपासना से और चारों की भी उपासना हो जाती है। इसीसे शिवोपासक पञ्चदेवोपासक कहलाते हैं। परन्तु दूसरे किसी एक ईश्वर की उपासना से पांचो ईश्वरों की उपासना नहीं कही जा सकती जैसे गंगा के सहायक नदियों के पानी पीने से गंगा का पीना नहीं कहा जा सकता, लेकिन जिसने गंगाजल पान किया है वह सहायक नदियों का भी जल पी चुका यह निर्विवाद है। अतएव जो पञ्चदेवोपासक होना चाहते हैं उन्हें शिवोपासक ही होना चाहिये, और शिवालयों में महादेव की मूर्ति बीच में स्थापन करके और चारो ईश्वरों को उनके चारो ओर कोण पर निकट ही स्थापन करना चाहिये। क्योंकि वेदान्तियों का किसी ईश्वर के साथ द्वेष नहीं है। कारण कि जितने ईश्वर हैं सब शिव से उत्पन्न हुवे शिव ही के अंश हैं

और अंत को उन्हीं में लीन होते है। अतः और चारों ईश्वरों की उपासना भी शिवोपासना हैं। परन्तु वेदान्ती मुख्य उपासक शिव के ही होते हैं।

कहने का तात्पर्य्य यह है कि वेदान्तियों के मुख्य उपास्य देव महादेव हैं इन्हीं का नाम परमेश्वर है। इन्हीं परमश्वर की उपासना, और मतवाले भी, किसी न किसी रूप में करते हैं। कुरान में भी इसी परमेश्वर को आसमान पर बतलाया है तथा इञ्जील में भी कहा है कि "ऐ हमारा बाप जो आसमान पर है"। इससे यह विदित है कि ये लोग भी उसी परमेश्वर की उपासना करते हैं जो आकाश के साथ सम्बन्ध रखता है। और आकाश के साथ हम महादेव का सम्बन्ध सिद्ध कर चुके। अतः संसार के सब लोग करीब २ महादेव ही के उपासक हैं। उपरोक्त कुरान और इञ्जील के वचन से यह भी सिद्ध होता है कि उस परमेश्वर का सम्बन्ध आकाश के साथ है जैसा कि हम पहले सिद्ध कर चुके हैं।

आर्य्यसमाजी लोग ईश्वर को निराकार कहके उसकी उपासना करते हैं। संसार में निराकार सर्वव्यापक आकाश ही है, अतः ये भी किसी न किसी रूप में हमारे कहे हुवे परमेश्वर केही उपासक हैं।

आजकल्ह के बहुत से सांटिष्ट लोग (साइन्स के जानने वाले) सूक्ष्म ईश्वर (इथरन) को ही ईश्वर मानते हैं। वे कहते हैं कि इससे परे कोई ईश्वर नहीं। यह सूक्ष्म इथर आकाश है। आकाश के साथ हम महादेव का सम्बन्ध सिद्ध

कर चुके हैं । सम्बन्ध क्या महादेव आकाशस्वरूप ही हैं। अतः ये इथरोपासक भी महादेव के ही उपासक हैं । कहां तक कहें सब लोग किसी न किसी रूप में उसी परमेश्वर के उपासक हैं जिसको वेदान्ती लोग शिव, महादेव, रुद्र वा वामदेव कहते हैं। अतः वेदान्तानुसार शिवही एक परम उपास्य देव है।

इति श्री शिवकुमारशास्त्रि कृते वेदान्तसिद्धान्तेएकविंशतितमोऽध्यायः।

शिव के उपासना की विधि ।

इस वेदान्त मत के निम्न कक्षा के लोग शिवालयों में जाकर शिव के*मूर्ति की पूजा और उपासना कर सकते हैं। इससे चित्त शुद्ध होकर ज्ञान का प्रकाश होगा । परन्तु वेदान्तियों के लिये शिव की मुख्य उपासना यह है कि " शिव को अपने से पृथक न समझे, " किन्तु अपने आत्मा को शिव से अभिन्न समझे ।

इस जीवात्मा को " शिवकुमार " कहते हैं । क्योंकि यह जीव उन्हीं से उत्पन्न हुवा उन्हीं का " कुमार; " अर्थात पुत्र है । इसी से वहुत से महात्मा जीवात्मा को शिव का पुत्र माने हैं। इसामसी जो इसाई मत के चलाने वाले एक महात्मा हो गये हैं उन्हों ने भी अपने को उस परम पिता का पुत्र माना है जो आसमान

* आजकलह के प्रचलित मूर्तिपूजा में कई एक दोष हैं। इसको किस प्रकार करना चाहिये सो कभी लिखेंगे ।

पर है । आसमान कहते हैं आकाश को ; आकाश का सम्बन्ध हम शिव के साथ सप्रमाण सिद्ध कर चुके । अतः ईसामसी के परम पिता शिवही हैं । पर केवल ईसा ही नहीं किन्तु जितने जीवात्मा हैं सब उसीपर परमेश्वर के पुत्र हैं ।

आप जानते हैं कि मनुष्य का पुत्र मनुष्य ही होता है दूसरा नहीं हो सकता । उसी प्रकार शिव का पुत्र शिव ही है दूसरा नहीं । शिवही अपने स्वरूप को भुलवा कर जीव पद को प्राप्त होता है । अतः यह जीव भी शिव है दूसरा नहीं ।

प्र०—क्या शिव में भी भ्रम होता है ?

उ०—नहीं, शिव में भ्रम नहीं होता । किन्तु वह कल्पना करके कई स्वरूपों को धारण करता है जिस रूप में वह भ्रम वा अज्ञान को धारण करता है उसका नाम शिव नहीं रह जाता उसका नाम जीव पड़ता है । परन्तु यह भेद काल्पनिक है वास्तविक नहीं । अतः यह जीव भी वास्तव में शिवही है; अन्य नहीं । वास्तव में एकही आत्मा सबमें व्यापक है । भेद कल्पित है । " यह जीव है, यह ईश्वर है और यह ब्रह्म है " यह सब भेद कल्पना मात्र है । अतः अपने आत्मा को शिवरूप समझना ही शिव की उपासना है । क्योंकि " उपासना " कहते हैं " उसके निकट बैठने" को अतः आप बारम्बार विचारिये मनन कीजिये कि हम " शिव हैं, " " शिव हैं, " " शिव हैं " । जितना ही आप इसको मनन कीजियेगा, उतनाही अज्ञानकल्पित बन्धन कटता जायगा ।

और आखिर को आप अज्ञानबन्धन से छूट कर शिवरूप हो जाइयेगा । अतः शिवोऽहम्, शिवोऽहम् ऐसा चिन्तन करना ही वेदान्त-सिद्धान्त के अनुसार सबसे बढ़कर शिव की उपासना है ।

इस उपासना से आत्मबल बढ़ेगा, अज्ञान का परदा सामने से हट जायगा वेदान्त-सिद्धान्त का हृदय में प्रकाश होगा । मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ, " इसका वारम्बार विचार करने से सारे दुख कट जायँगे भय का पता नहीं लगेगा, हृदय की दुर्बलता मिट जायगी । उसी समय एक नवीन जीवन और एक नवीन वीरता आ जायगी । और " नया जीवन और नवीन शक्ति का उत्पन्न होना " इस उपासना का फल है । इसी उपासना के बल से हम जीवन मुक्त हो सकते हैं । यह जान कर, अज्ञानता दूर कर, एक बार विचार कीजिये कि वह परमेश्वर शिव हमी हैं, वह परमात्मा हमी हैं, वह महादेव हमी हैं, फिर हृदय देखिये कैसा आनन्द आता है । परन्तु हृदय से कहिये, श्रद्धा से कहिये, विश्वास के साथ कहिये और तमाशा देखिये ॥

इति श्रीशिवकुमार शास्त्रिकृते वेदान्तसिद्धान्ते
द्वाविंशतितमोऽध्यायः

गणेश ।

अब तक हमने चार ईश्वरों का वर्णन किया है । और

उनका सम्बन्ध पृथ्वी, अग्नि, जल और आकाश के साथ प्रबल युक्ति प्रमाणों से सिद्ध कर दिया है । जिसमें अब कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता । तो जब की इन चारों ईश्वरों का सम्बन्ध पृथ्वी, अग्नि, जल और आकाश के साथ है तो गणेश का सम्बन्ध वायु के साथ सिद्ध होता क्योंकि अब पांच तत्वों में से यही एक तत्व बचा है । तद्वत पांच ईश्वरों में से यही एक गणेश ईश्वर बचे हैं । अतएव गणेश वायु तत्व के स्वामी हैं यह सिद्ध हुआ क्योंकि और बाकी तत्वों के स्वामी दूसरे ईश्वर सिद्ध हो चुके हैं । जिस में कुछ भी भूल नहीं है ।

गणेश का वायु के स्वामी होने में एक और प्रमाण है । वह यह है कि महादेव आकाश के स्वामी हैं वा महादेव का आकाश के साथ सम्बन्ध है इसको हम सिद्ध कर चुके हैं । वायु आकाश से उत्पन्न होता है । अतः वायु का गणेश से सम्बन्ध है । इसीलिये गणेश को महादेव का पुत्र माना गया है । पुराणों में हनुमानजी को भी महादेव का पुत्र मानते हैं । इसीलिये हनुमान जी का भी सम्बन्ध विशेष करके वायु के ही साथ है । हनुमान जी वायु के अंश थे । इतना ही नहीं हनुमानजी वायु को अपने आधीन में किये थे । क्योंकि वे वायु में इतने वेग से उड़ सकते थे कि थोड़ी देर में लंका से धवलागिरि पर चले गये और उसे लेकर फिर वहां से चले आये । उनका वेग वायु के समान था । रामायण में भी कहा है ।

पवनतनय-बल पवन समाना ।
का चुप साधि रहा बलवाना ॥

गौरीपुत्र ।

गणेशजी गौरीपुत्र अर्थात देवी के पुत्र कहलाते हैं। इस से भी यह सिद्ध होता है कि गणेश का वायु के साथ सम्बन्ध है । क्योंकि स्थूल वायु जो हमारी पृथ्वी के चारो ओर है वह पृथ्वी से उत्पन्न होता है। यहां पर उस सूक्ष्म वायु से प्रयोजन नहीं है जो आकाश से उत्पन्न होता है। आप यदि रेलगाड़ी पर चढ़े होंगे तो यह देखे होंगे कि जब गाड़ी ज़ोर से चलने लगती है तो गाड़ी के दोनों ओर एक प्रकार का स्थूल वायु उत्पन्न होजाता है। उसका वेग गाड़ी के दोनों ओर लगभग दो गज के होता है। वह स्थूल वायु आंधी के समान चलता है। इसलिये यह स्थूल वायु रेल से उत्पन्न हुआ कहा जायगा। उसी प्रकार पृथ्वी के वेग से उसके चारो ओर एक प्रकार का स्थूल वायु उत्पन्न हो जाता है। और वह पृथ्वी के चारो ओर कई सौ मील तक फैला रहता है। पाश्चात्य वैज्ञानिक इस स्थूल वायु के आगे वायु को नहीं मानते। परन्तु यह उनकी भूल है। इसके आगे भी वायु है। परन्तु ऐसा स्थूल वायु नहीं होता जिसमें रह कर हम लोग अपना जीवन धारण करते हैं। किन्तु वह ऐसा सूक्ष्म होता है कि वहां जाकर साधारण मनुष्य कभी नहीं जी सकता,

और न वहां पर उस सूक्ष्म वायु का अनुभव ही कर सकता है । परन्तु यदि इसके के आगे वह सूक्ष्म वायु भी न होता तो कब सम्भव था कि आगे के योगीन्द्र और विमानारूढ लोग एक लोक से दूसरे लोक जाते । आज उस प्रकार का विमान भारत वर्ष में नहीं है परन्तु इसको असत्य नहीं मानना चाहिये क्योंकि एक प्रकार का विमान इस समय भी बन चुका है । जब तक नहीं बना था तब तक इसको भी बहुत से लोग असत्य मानते थे ।

तात्पर्य्य कहने का यह है कि यह स्थूल वायु जिसमें कि हमलोग जीवन धारण करते हैं पृथ्वीके वेगसे उत्पन्न होता है, और पृथ्वी का सम्बन्ध देवी वा गौरी के साथ है । इसी से गणेश देवीपुत्र वा गौरीपुत्र कहलाते हैं । क्योंकि गणेश का सम्बन्ध वायु के साथ है ।

बिनायक ।

विनायक इस शब्द में वि उपसर्ग मानी विशेष के हैं और नायक स्वामी को कहते हैं । जो विशेष स्वामी है उसको विनायक कहते हैं । संसार में विशेष कर कर के सबका स्वामी वायु है यदि वायु न हो तो संसार का कोई पदार्थ नहीं रह सकता । संसार भर का प्राण वा जीवन वायु है । वायु काही नाम प्राण वा जीवन है । प्राण स्वयं वायु रूप है । इस शरीर का भी स्वामी प्राण ही है । इसीके रहने से संसार चलता फिरता और सब कार्य्य करता है । इसके निकल जाने से सर्वइन्द्रिययुक्त शरीर मृतक

हो जाता है । इन्द्रियां सब रहती हैं परन्तु बिना प्राण के शरीर कुछ नहीं कर सकता । इसी लिए प्राण शरीर का विशेष स्वामी है और उससे सम्बन्ध गणेश से है । इसीसे गणेश विनायक कहलाते हैं । इस विनायक नाम से तथा उपरोक्त कई एक प्रमाणों से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि गणेश वायु के स्वामी हैं । इनका सम्बन्ध वायु के साथ है । गणेश का वर्णन बीच में छूट गया था वह भी यहां पर कह दिया गया ।

इति श्री शिवकुमारशास्त्रिकृते वेदान्तसिद्धान्ते

त्रयोविंशतितमोऽध्यायः

ईश्वरों का शरीर ।

प्र०–विराट शरीर के भीतर, इन ईश्वरों का कोई छोटा शरीर होता है वा नहीं ?

उ०–विराट शरीर के सिवाय छोटा शरीर भी होता है ।

प्र०–क्या ईश्वर का शरीर मनुष्य का सा होता है ?

उ०–हां, ईश्वर का शरीर मनुष्य का सा होता है ।

प्र०–आप मनुष्य हैं इसलिये ईश्वर को मनुष्य का सा मानते हैं । यदि बैलों से पूँछा जाय तो वे ईश्वर को बैल समान और चिड़ियों से पूँछा जाय तो वे ईश्वर को चिड़ियों के समान बतलावेंगी । अतः किसकी बात मानी जाय ? अतः यह पक्ष, आप का ठीक नहीं मालूम होता ।

उ०—मनुष्य के सिवाय पशुवों के शरीर की बनावट ऐसी नहीं होती कि जिसमें ब्रह्मज्ञान हो सके अतः ईश्वर का शरीर सिवाय मनुष्य के दूसरे के समान नहीं हो सकता । दूसरी बात यह है कि बैल अपने समान ईश्वर को नहीं कह सकता क्योंकि बैल को ईश्वर का ज्ञान ही नहीं है । समझने की बात तो यह है कि ईश्वर जिस प्रकार के शरीर में है उसी प्रकार के शरीर में जब जीवात्मा आता है तभी इसे ईश्वर का ज्ञान होता है । जब तक यह अन्य प्रकार के शरीर में रहता है तब तक इसे ईश्वर का ज्ञान नहीं होता । इसलिये यह सिद्ध होता है कि ईश्वर सिवाय मनुष्य के आकार के पशु पक्षी के आकार का नहीं है । क्योंकि पशु पक्षी के शरीर में ईश्वर का ज्ञान नहीं होता । यदि पशु पक्षी के शरीर में भी ईश्वर का ज्ञान होता तो हमारा पक्ष असंगत माना जाता ।

मनुष्य के उस बड़े शरीर के भीतर हृदयादि देश में कई एक अत्यन्त छोटे २ शरीर भी विराजमान हैं । जो छोटे होने पर भी रूप रंग में इस बडे शरीर के समान ही होते हैं । देखिये इसी पुरुष के एक विन्दु वीर्य्य में ऐसे अनेक शरीर होते हैं । वही एक शरीर गर्भ में चला जाता और कुछ ही दिनों में वही बढ़ कर इस बड़े आकार को प्राप्त होता है । इसीसे पुत्र प्रायः माता पिता के आकार के होते हैं । फरक जो थोड़ा सा पड़ता है उसका कारण यह है कि पुत्र का शरीर माता और पिता

दोनों के संयोग से बनता है। यदि सूक्ष्मदृष्टि से देखा जाय तो इस शरीर के प्रत्येक परमाणु इसी शरीर के आकार के हैं। इसी प्रकार उस परमात्मा के विराट शरीर के भीतर उसके अनेक छोटे शरीर भी हैं। परन्तु जिस प्रकार इस शरीर के भीतर एक मुख्य छोटा शरीर ब्रह्मरन्ध्र (दिमाग Brain) में है उसी प्रकार इस विश्व में परमेश्वर का एक मुख्य छोटा शरीर शिवलोक में है। जैसे ब्रह्मरन्ध्र शरीर में सब से ऊपर है उसी प्रकार विश्व भर में शिवलोक सब से ऊपर है।

प्र०—महादेव के कितने मुख और कितने हाथ हैं ?

उ०—महादेव के एक मुख और दो हाथ हैं।

प्र०—तब महादेव को लोग पञ्चमुख क्यों कहते हैं ?

उ०—पञ्चमुख लोग इससे कहते हैं कि ये महादेव पांचो ईश्वरों में मुख्य हैं। यदि पांच मुख हों तो पांच कंठ भी होना चाहिये, पांच कंठ हों तो पांच छाती भी होनी चाहिये, पांच छाती हो तो पांच उदर का होना आवश्यक है और पांच उदर होतो १० दश पैर भी होना चाहिये, सो नहीं हैं। अतः महादेव पांच मुखवाले सिद्ध नहीं होते। आपही विचारिये मनुष्य के एक शरीर में पांच मुख किस प्रकार बैठेगा।

प्र०—क्या विष्णु के चार हाथ हैं ?

उ०—नहीं।

प्र०—तब विष्णु चतुर्भुज क्यों कहलाते हैं ?

उ०—विष्णु चतुर्भुज इसलिये कहलाते हैं कि वे भुजबल में बड़े चतुर हैं । चार भुजा होने के लिये दो छाती तथा दो उदरादि होना चाहिये सो विष्णु के नहीं हैं । अतः विष्णु चतुर्भुज नहीं ।

वेदान्त का महत्व ।

साधारण लोग विज्ञान नहीं जानते । वे विज्ञान की बातों को सुन कर हँसते हैं । जैसे पृथ्वी का चलना, सूर्य्य का पृथ्वी से भी बड़ा होना, पानी का कीटमय होना और अग्नि में कीड़ा का निवासादि विज्ञान की बातों को सुनकर अज्ञानी लोग हँसते हैं । क्योंकि यह ज्ञान साधारण दृष्टि से दूर है । विज्ञान उसीको कहते हैं जिस बात को साधारण लोग नहीं जानते । उसी प्रकार इस वेदान्त—सिद्धान्त को सुन कर साधारण लोग हँसेंगे क्योंकि इसका ज्ञान भी साधारण लोगों के समझ में नहीं आता । जैसे—(१) जीव, ईश्वर, ब्रह्म और संसार का कल्पित भेद, (२) ईश्वरों का पांच होना, उनमें से एक महेश्वर का उपास्य देव मानना, (३) फिर वास्तविक ज्ञान से जीव, ईश्वर, परमेश्वर, ब्रह्म और संसार इन पांचों को अभिन्न मानना, (४) केवल ब्रह्म को सत्य और सारे संसार को असत्य मानना और "मैं ब्रह्म हूं" इस चिन्तन से जीव का कल्याण, मानना, इत्यादि विज्ञान वा फिलासफी के विषय हैं । इसको सुनकर साधारण लोग हँसने के सिवाय और कुछ नहीं जानते । परन्तु यह विज्ञान है यह फिलासफी